राजस्थान के त्योहार-गीत

राजस्थान के त्योहार-गीत

डॉ० जगमल सिंह
एसोशिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग,
मणिपुर विश्वविद्यालय, कांचीपुर, इम्फाल
मणिपुर

मूल्य 75 00 रुपये
प्रकाशक अंकुर प्रकाशन
1/3017, मंडोली रोड, रामनगर,
शाहदरा, दिल्ली-110032
प्रथम संस्करण 1988

आवरण चेतनदास
मुद्रक सीमा प्रिंटिंग प्रेस मोहन पार्क
शाहदरा, दिल्ली-110032
में मुद्रित

परम पूजनीय दादाजी—
जिनके वरद हस्त की शीतल छाया में शैशव-सुमन सुवासित हुआ
और जिनका आशीर्वाद ही मेरे जीवन का सम्बल है—
की दिवगत आत्मा को
सादर समर्पित

भूमिका

बाल्यकाल मे प्रात. स्मरणीय दादा जी की गोद मे बैठकर राजस्थानी लोक कथाएँ सुनी थी और परम पूज्य दादी जी ने लोकगीत, तभी से लोक साहित्य मे मेरी गहरी रुचि रही है। स्मृति-पटल पर आज भी वे सब अंकित हैं। जब से होश सँभाला, लोक साहित्य का सकलन करने लगा। एम० ए० करने से पूर्व ही लोक-गीतो से सम्बन्धित आलेख पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होने से लोक साहित्य पर लिखने की प्रेरणा एव प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा।

एम० ए० परीक्षा के आठवें प्रश्न-पत्र के लिए मैंने 'राजस्थान के त्योहारगीत' विषय पर पूज्य दिवगत गुरुदेव डॉ० देवराज उपाध्याय के निर्देशन में यह प्रबन्ध लिखा था। डॉ० देवराज उपाध्याय मे इस प्रबध का निर्देशन तो डॉ० देवराज से प्रकाशन प्रेरणा। इन दोनो को क्या कहूँ—जो मेरे अपने हैं। भाई देवराज ने तो प्रकाशन हेतु प्रेस-कापी तैयार करने म भी सहायता दी। प्रबन्ध लिखते समय श्रद्धेय गुरुदेव रामगोपाल शर्मा दिनेश तथा प्रो० राधेश्याम त्रिपाठी ने अपने अमूल्य सुझाव दिये, अतः मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। माता जी व पत्नी ने गीत सकलन म सहायता दी, उन्हें क्या कहा जाए?

पुस्तक के प्रथम भाग म राजस्थान के आठ त्योहारो की परम्परा व उन पर गाये जाने वाले गीतो का विवेचन है और द्वितीय भाग मे इन त्योहारो से सबधित लोकगीत। त्योहार तो और भी हैं परन्तु यहां केवल उन त्योहारो को ही लिया गया है, जिन पर लोकगीत गाये जाते हैं।

अन्त म अकुर प्रकाशन के भाई अरुण जी के प्रति आभार प्रकट करना आवश्यक है, जिन्होंने प्रकाशन का उत्तरदायित्व सँभाला।

—जगमल सिंह

क्रम

होली के गीत

जिस समय शिशिर व्यतीत होता है और वसन्त वसुन्धरा का शृंगार करता है उसी समय होली का पर्व आता है। जब वसन्त का मादक पवन धरा पर नवीन उल्लास लेकर आता है और खेतो मे सरसो के पीत वर्ण के पुष्प लहलहा उठते हैं तब ऐसा लगता है मानो धरा ने प्रिय के आगमन पर पीत वस्त्र धारण किए हो। इधर अनाज की बालियाँ पक जाती हैं और उनसे भी एक भीनी सुगन्ध वातावरण मे अपूर्व रस का सचार करती है। चारो ओर मादकता तथा मस्ती छा जाती है। ऐसे समय मे ही होली का त्योहार सम्पन्न होता है।

कलियाँ प्रस्फुटित होकर पुष्प का रूप धारण करती है और उन पुष्पो पर भ्रमर मधुर गुजार करने लगते है। प्रकृति के इस अपूर्व सौंदर्य को देखकर मानव-मन मयूर सा नृत्य करने लगता है और कोकिल-सा कूकने लगता है। यह प्राकृतिक छटा मनुष्य की कोमल भावनाओ को प्रेरित करती है और मानव-हृदय से गीतो के स्वर फूट पडते है। इस अवसर पर नर-नारी सामाजिक बन्धनो, शिष्टता एव सभ्यता की सीमाओ का अतिक्रमण कर मुक्त भाव से अन्तर की दमित भावनाओ को प्रकट करते हैं। हृदयोल्लास मर्यादा के बाँध तोड कर समस्त विकारो को निष्कासित कर देता है और वे मानसिक विकार होली की अग्नि मे भस्मीभूत हो जाते है।

यो तो सभी त्योहार धूमधाम से मनाए जाते है, किन्तु होली का त्योहार विशेष धूमधाम के साथ मनाया जाता है। होली हमारा राष्ट्रीय पर्व है। अन्य त्योहारो पर नारी का एकाधिकार है, किन्तु होली के त्योहार मे पुरुष भी भागीदार हैं। कृपको के घर धन-धान्य से पूर्ण हो जाते हैं। ऐसे समय पर ढोल एव चग की मधुर ध्वनि से दिगन्त गूंज उठता है और गैर ढोल की ध्वनि के साथ नृत्य करने लगते हैं।

होली पर गैर नृत्य

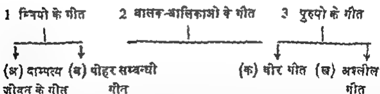
राजस्थान का गैर नृत्य जो कि पुरुष नृत्य है, बहुत ही प्रसिद्ध है। होली के

अवसर पर गाँव के सभी पुरुष गाँव के चौहटे[1] में गैर नाचने के लिए एकत्र हो जाते है। गैर नृत्य में जो लोग सम्मिलित होते है उन्हें गैरिये कहते है। ये अपने-अपने डडिये या काणीए लेकर चौहटे में आ पहुँचते हैं। चौहटे को गैर भी कहा जाता है। नृत्य आरम्भ होने से पूर्व ये सब गैरिये गैर मे एक वृत्त की परिधि में खडे हो जाते हैं। इस वृत्त के केन्द्र में ढोल या नगाडा रखा जाता है जिसको ढोली बजाता है। जब नृत्य आरम्भ होता है, तो ढोल की ताल के साथ गैरिये अपने डडिये लडाते हुए उस वृत्त की परिधि पर घूमते हैं। घूमने में एक विशेषता यह होती है कि एक व्यक्ति जब वृत्त के भीतरी भाग में होता है तो एक बाहरी भाग म। वे आपस मे डडिये लडाकर, भीतर वाला बाहर और बाहर वाला भीतर चला जाता है। इस प्रकार गैर नृत्य का क्रम चलता रहता है। ढोल की ताल के साथ सैकडो डडियो के लडने की ध्वनि होती है, वह बडी मनोहर होती है।

जिस समय गैर नृत्य चलता है उस समय स्त्रियाँ भी वहाँ देखने जाती हैं। वे बैठकर गीत गाती रहती हैं और गैर नृत्य चलता रहता है। जब गैर नृत्य समाप्त होता है तब पुरुष चग लेकर उस पर गीत गाना आरम्भ करते हैं। गैर नृत्य और यह गाने का क्रम होली के पन्द्रह दिनो पूर्व ही आरम्भ हो जाता है और होली तक चलता रहता है।

होली के गीतो का वर्गीकरण

होली के अवसर पर गाए जाने वाले गीतो का विभाजन हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं—



स्त्रियाँ गैर या चौहटे के आस-पास की हथाई अर्थात् चबूतरा पर बैठकर गीत गाती हैं। स्त्रियो के गीतो को हम विषय की दृष्टि से दो भागो म विभाजित कर सकते हैं। दाम्पत्य जीवन से सम्बन्धित गीत तथा पीहर सम्बन्धी गीत। बालक एव बालिकाएँ भी इस अवसर पर क्यो मौन रहे ? वे भी अपने सरल हृदय के भावो की अभिव्यक्ति करते हैं। पुरुष अपने प्रिय सगीत वाद्य चग पर अपने

1 गाँव का वह मैदान जिसमे सामूहिक नृत्य होता है।

मानस के भावो की अभिव्यक्ति करते हैं। राजस्थानी पुरुष सर्वप्रथम वीर है और तत्पश्चात् कुछ और। अत वे इस अवसर पर भी अपने वीर भावो की अभिव्यक्ति करते हैं। सामाजिक बन्धनो, मर्यादाओ मे दबी उनकी हृदयस्थ वासना भी इस अवसर पर सीमाओ का अतिक्रमण करती है और वे स्वच्छन्द रूप से अपनी दबी हुई काम-भावना की अभिव्यक्ति अश्लील गीतो के रूप में करते हैं। अब हम उपयुक्त विभाजन के अनुसार ही होली के अवसर पर गाए जाने वाले गीतो का विवेचन करेंगे।

(1) स्त्रियों के गीत

(अ) दाम्पत्य जीवन के गीत

लोकगीतो मे नारी-हृदय का मूक प्रेम मुखर हो जाता है। नारी का पुरुष के प्रति आकर्षण स्वाभाविक है। वह अपने पति के प्रत्येक कार्य-कलाप मे आनन्द की अनुभूति करती है। नारी-हृदय के प्रेम ने लोकगीतों मे जो भाव चित्र चित्रित किए हैं, उनका अपना विशेष महत्त्व है। इन गीतो में नारी हृदय का प्रतिबिम्ब झलकता है।

नारी लोकगीतो मे विविध रूपो म प्रगट हुई है। वह लज्जित हुई है, रोई है। उसने पुरुष को उपालम्भ दिए हैं। उसने अपने अन्तर की पीड़ा एव आनन्द को लोकगीतो के माध्यम से ही व्यक्त किया है। देखिए प्रियतम गैर मे नाच रहे हैं बड़ी शीघ्रता से। प्रियतमा को आशका हुई कि कही मेरे प्रियतम को इस तीव्रता से नाचता हुआ देखकर कोई डायन न डकार जावे। उसने प्रिय को उपालम्भ दिया, यथा—

> दोय दोय कणिया लेन भँवरजी गैर नाचवा चाल्या।
> घरां थारी परणियोडी ओलबिया झाले रे धीरे नाच॥
> डाकणियाँ डकराय रा ले रे धीरे नाच॥[1]

अर्थात् दो दो कणिये (डडिये) लेकर प्रियतम गैर नाचने गए हैं। उनकी प्रियतमा घर बैठी ही उपालम्भ दे रही है कि वे धीरे क्यों नही नाचते। उसे आशका है कि उन्हे डायन डकार जाएगी इसलिए वह कहती है कि वह क्या नही धीरे नाचता है। यहाँ हमे लोक विश्वास की स्पष्ट झलक दृष्टिगोचर होती है। ऐसी मान्यता है कि डायन किसी सुन्दर पुरुष अथवा किसी सुन्दर बालक या स्वस्थ व्यक्ति को नजर लगा देती है। परिणामस्वरूप उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती

1 पूरा गीत देखिए परिशिष्ट गीत-सख्या 5

है। साथ ही इन पंक्तियों में एक ध्वनि भी निहित है। पत्नी को अपने प्रियतम के सुन्दर रूप का तथा उसकी त्वरा (चुस्ती) का निरूपण करना है, किन्तु सीधे तथा सरल ढंग से इस बात की अभिव्यक्ति करने में मजा ही क्या? डायन के खा जाने का भय तभी तो हो सकता है जबकि वह सुन्दर हो और उसमें असाधारण त्वरा हो।

ध्यान रहे ध्वनि की चर्चा करते हुए ध्वनिवादियों ने ध्वनि के भेदों में वस्तु से वस्तु ध्वनि का उल्लेख किया है। उपरोक्त गीत इसका भी उदाहरण है। यहाँ नायिका पति को सुन्दर कहती नहीं। वह तो उसे धीरे नाचने के लिए कहती है क्योंकि डायन उसे खा जाएगी। परन्तु इसी वाच्यार्थ के द्वारा यह व्यंग्यार्थ भी निकलता है कि मेरा पति सुन्दरता में अद्वितीय है। यदि इस दृष्टि से देखा जाए तो लोकगीतों में ध्वनि के भेदोपभेद के उदाहरण भी मिल जाएँगे और ये उदाहरण अधिक हृदयस्पर्शी होंगे क्योंकि ये सहज भाव से आ गए हैं।

अपने प्रिय व्यक्ति के लिए मानव-हृदय में व्यर्थ की तरह-तरह की दुश्चिताएँ बनी रहती हैं। जहाँ पर किसी तरह के कष्ट के होने की आशंका होने की सम्भावना नहीं है वहाँ पर भी प्रेमी कष्ट की कल्पना कर लेता है। इसी से मनोविज्ञान के ज्ञाताओं ने प्रेम को पाप-शंकी कहा है। श्रीकृष्ण मथुरा के राजाधिराज हो गे, उनको किस बात की कमी थी। फिर भी यशोदा को उनके लिए बड़ी चिंता है कि उनको समय पर भोजन आदि नहीं मिलता होगा। तभी तो सूर ने कहा है—

> सन्देसो देवकी सों कहियो।
> हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो॥
> अब यह सूर मोहि निसिबासर बड़ो रहत जिय सोच।
> अब मेरे अलक लड़ैते लालन ह्वै है करत सकोच॥

तुलसी की कौशल्या भी इसी प्रकार चिन्तित है—'कौन बिरछ तर भीजत होंगे राम लखन दोउ भाई।" उसी प्रकार एक नारी की भी दशा देखिए। वह नदी के किनारे उठते हुए धुएँ को देखकर यह कल्पना करती है कि कहीं प्रिय ही न जल रहे हों—

> नदी किनारे धुँवा उठत है मैं जानूँ कुछ होय।
> जिसके कारण मैं जली वही न जलता होय॥

आज हम ज्ञान विज्ञान के आलोक में बहुत सभ्य और चतुर हो गए हैं। यदि हमारी ऐसी हालत है तो लोकगीत की बेचारी नायिका, जिसकी बुद्धि का विकास नहीं हुआ है उसकी तो बात ही क्या कहनी और यदि वह अपने पति को डायन

की नजरों से बचाने के लिए कहती है तो यह कितना स्वाभाविक है? आज की सभ्य और बुद्धिमती नारी यदि इस तरह के विचार प्रकट करती है तो उसमें अस्वाभाविकता की बू आ सकती है, परन्तु लोकगीत की नारी के इस निश्छल हृदयोद्गार को हमारा हृदय सहजतापूर्वक ग्रहण कर लेता है।

गैर नाच देखने का सभी स्त्रियों को बड़ा चाव होता है। वे शीघ्र अपने घर का कार्य समाप्त कर चौपाल पर पहुँचने के लिए उत्सुक रहती हैं। जब चौपाल पर सभी स्त्रियाँ एकत्र हो जाती हैं तो उनके बीच हास्य-विनोद भी चलता है। जिस स्त्री का पति अच्छा नाच रहा हो, उसे माध्यम बनाकर उस स्त्री के साथ विनोद किया जाता है। ऐसी परिस्थिति में वह बेचारी लज्जा के मारे गड़ जाती है।

नारी स्वभाव से ही संकोचशील होती है। फिर ससुराल में तो सास ननद का बड़ा शासन होता है। नारी वहाँ मर्यादाओं की सीमा में आबद्ध रहती है। वह जब गैर देखने जाती है तो संकोच के कारण सास-ननद की आँख बचाकर ही जाती है। एक वधू गृह कार्य समाप्त करके कमर में चाबी बाँध कर जब गैर देखने चली तो उसकी एड़ी के झटके से चाबी गिर गई। सहेली से कहने लगी कि मैं तो कमर में चाबी बाँध कर गैर देखने के लिए आई थी, किन्तु चाबी गिर गई है, ढूँढ लूँ तो चलूँ। फिर मैं तो सास ननद से छिपकर भी तो आई हूँ। वास्तव में उसकी चाबी तो खोई नहीं थी, किन्तु उसके प्रियतम तलवार से गैर नाच रहे थे। इसलिए वह समझ गई कि अभी जाते ही सखियों के विनोद का शिकार होना पड़ेगा, तो उसने चाबी का बहाना बना लिया, वास्तव में—

> आज म्हारो परणियोड़ो तरवारियाँ नाचे रे।
> मूँ तो पाछी फरगी रे, लाज्याँ मरगी रे ॥[1]

उसे डाँटने का बहाना चाहिए था क्योंकि प्रियतम तलवार से गैर नाच रहे थे। बेचारी संकोच के कारण लौट पड़ी।

प्रत्येक त्योहार पर पत्नी अपने पति को घर पर देखना चाहती है। त्योहारों के अवसर पर जो उल्लास और आनन्द होता है उसका उपभोग नारी के लिए पति के बिना उसी तरह फीका है जिस तरह भोजन में नमक का अभाव। फिर होली तो फाल्गुन मास में आती है जबकि चंग की थाप पर संयोग शृंगार के गीत गूँजने लगते हैं। वसन्त का मादक पवन हृदय में काम-वासना को उग्र करता है और प्रकृति के सभी उपकरणों में मादकता का समावेश हो जाता है। ऐसे पुनीत पर्व पर नारी अपने प्रवासी प्रियतम को आमन्त्रित न करे यह कैसे सम्भव ?

---

1 देखिए गीत परिशिष्ट, गीत-संख्या 6

साथीड़ा फागण बोले रे मीनो फागण रो।
औरां तो दिनां थारा दाय पड़े तो आज्ये रे॥
होळी आला मीना में जरूर आज्ये रे।
मीनो फागण रो॥[1]

अर्थात् हे प्रियतम ! तुम्हारे साथी फागण गा रहे हैं। यह फाल्गुन मास है। और दिनों में तो तुम्हारी इच्छा हो तो आना, किन्तु फाल्गुन के महीने में तो अवश्य ही आना। अहोभाग्य थे प्रिया के कि उसके प्रियतम होली के अवसर पर घर आ पहुँचे। अब इसी गीत में इनके दाम्पत्य प्रेम की झलक भी देखिए—

मूं कवे मारुणी थारे झालरो गढाऊँ,
होळी आई रे मूं थने बींदणी बणाय देऊँ।
थारी सायणियाँ में खेलण मत जाय,
कियो मान जा॥

हे मारुणी ! यदि तू कहे तो तेरे लिए मैं झालरा[2] बनवा दूं। होली आई है, मैं तुझे बींदणी (नई दुल्हन) बना दूँ, किन्तु तू अपनी सहेलियों में खेलने के लिए मत जा। नारी शृंगार-प्रसाधन में रुचि रखती है। पति इस तथ्य को भली भाँति समझता है कि नारी-हृदय का आभूषणों के प्रति एक स्वाभाविक आकर्षण होता है। तभी तो वह उसे झालरा बनवा देने का लालच दे रहा है। परन्तु अब पत्नी को भी देखिए, कहने लगी—आप भी अपने साथियों में खेलने के लिए मत जाओ। यदि तुम मेरी यह बात मान लोगे तो मैं भी—

कहो तो भँवर थाने रुमाल्यो रँगाई दूं।
होळी आई मूं थाने बींद बणाई दूं॥

तुम्हारे लिए रुमाल रँगवा दूँगी और बींद (दुल्हा) बना दूँगी।

उपर्युक्त गीत में हमें पति-पत्नी के प्रगाढ़ प्रेम के दर्शन होते हैं। वे एक-दूसरे से विलग नहीं होना चाहते हैं। वे अपने साथियों से मिलना छोड़कर संयोग-सुख के आनन्द का उपभोग करना चाहते हैं। यहाँ बींद एवं बींदणी बना देने वाली बात में एक ध्वनि है। वास्तव में बींद-बींदणी तो केवल विवाह के समय कहे जाते हैं किन्तु यहाँ इन शब्दों का प्रयोग इसलिए किया गया है कि हम यह संकेत प्राप्त कर जावें कि वे एक-दूसरे को उसी प्रकार सजा सकते हैं जैसे कि विवाह के समय सजाए गए थे। इसका अर्थ वर-वधू से नहीं उस समय के शृंगार से है।

---

1. देखिए परिशिष्ट गीत संख्या 7
2. गले में पहनने का आभरण।

इस गीत में दाम्पत्य प्रेम का अनूठा स्वरूप देखिए। सम्पूर्ण गीत प्रश्नोत्तर शैली में है—

पत्नी—चाँदा तो थारे चानण रे रसिया।
पानिया गई औं तालाब रसिया ।।
फागण में तो फागणियो रंगाद्यो रसिया।
होली खेलो रसिया फागण आया ।।
पति—राजी राजी बोल तने फागणियो रँगाद्यूँ।
राखूँ म्हारे छाती रे, जीव की जड़ी ।।
गुलाब की छड़ी मिश्री की डली।
होली खेलो गोरी फागण आयो ।।[1]

पत्नी अपने पति से कहती है—हे रसिया! चन्द्रमा तो तेरे प्रकाश से है अर्थात्—चन्द्रमा में जो दीप्ति है वह तेरी है। मैं पानी भरने के लिए तालाब पर गई। हे रसिया! तुम फाल्गुन मास में मेरे लिए फागणिया[2] रंगा दो। मेरे साथ होली खेलो हे रसिया क्योंकि फाल्गुन मास है।

अब पति का उत्तर भी देखिए कितना भाव-भरा है—हे प्रिया! तुम मुझसे प्रसन्नतापूर्वक बात करो। मैं तुम्हें फागणिया रँगा दूँगा। मैं अपनी पत्नी को हृदय में जड़ी हुई रखूँगा। तुम गुलाब की छड़ी के समान हो, मिश्री के टुकड़े के समान हो। हे गोरी! फाल्गुन आया है। होली खेलो।

काव्य में चन्द्रमा से किसी की सुन्दरता की उपमा दी जाती है, किन्तु इस गीत में तो प्रियतम की कान्ति से ही चन्द्रमा दीप्त है। नायक काव्य-क्षेत्र में भी यह कहते हुए सुने जाते हैं कि नायिका ने उनके हृदय में स्थान बना रखा है, किन्तु यहाँ तो नायक ने नायिका को अपने हृदय में जड़ लिया है। प्रिया के लिए यहाँ जो उपमान आए हैं, वे भी अनूठे उपमान हैं—गुलाब की छड़ी, मिश्री का टुकड़ा। कितनी अनूठी एवं सुन्दर उपमाएँ हैं! ये उपमान हृदय को छू लेने वाले हैं, इनमें स्वाभाविकता है, मौलिकता है, नैसर्गिकता है और ये कृत्रिमता से कोसों दूर हैं। इसी गीत में आगे फिर एक उपमान और देखिए—

यूँ म्हारी माँ की लाडली जी रसिया।
मोत्याँ बचली लाल जी रसिया ।।

यहाँ देखिए पत्नी अपने रसिया से कह रही है कि मैं अपनी माँ की अत्यन्त

---

1 देखिए परिशिष्ट गीत संख्या 10

2 स्त्रियों का सिर पर ओढ़ने का वस्त्र

प्रिय हूँ जिस प्रकार मोतियो के बीच मे लाल हो। यहाँ उसने माँ के सम्मुख अपने महत्व को प्रकट करने के लिए अपने आपको मोतियो के बीच लाल कहा है। मोतियो के बीच जब लाल हो तो वह अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है और सुन्दर होने के कारण विशेष प्रिय भी, यह सकेत यहाँ स्पष्ट है।

होली के अवसर पर रग खेलने की प्रथा है। निम्न गीत मे पिचकारी मारने का दृश्य देखिए—

> कुण मारी पिचकारी ?
> म्हारा मुखड़ा पर कुण मारी पिचकारी ?
> चढ़ता जोवन मे कुण मारी पिचकारी ?[1]

अर्थात् पिचकारी किसने मारी ? मेरे मुँह पर पिचकारी किसने मारी ? मेरे इस चढ़ते हुए यौवन मे किसने पिचकारी मारी ? आगे कहती है कि मेरे सिर पर ममद की अपूर्व छटा है और उस पर रखडी (बोर)[2] की छवि तो निराली थी। ऐसे म किसने पिचकारी मारी ?

> बाई सा रा बीरा सासू जी रा जाया।
> तो साजन मारी पिचकारी ॥

कहना था कि उसके प्रियतम ने पिचकारी मारी है। किन्तु भारतीय नारी सकोचशील होती है। देखिए, कितने नाटकीय ढग से यह इसी बात को कहती है—बाई सा (ननद) के बीरा (भाई) और सासुजी के पुत्र न पिचकारी मारी है। तो साजन ने पिचकारी मारी है। यहाँ जो पिचकारी किसने मारी का प्रश्न था उसका बहुत सीधा तथा सरल उत्तर था कि साजन ने पिचकारी मारी है, किन्तु इस ढग मे कहने मे गीत मे एक विशिष्ट सौंदर्य का समावेश हुआ है।

लाल केसिया राजस्थान का एक प्रचलित अश्लील गीत है। इसको नारी तथा पुरुष दोनो ही गाते हैं। इसी गीत के सयत रूप का एक अश जिसे स्त्रियाँ बिना किसी झिझक के चबूतरो पर भी बैठ कर गाती हैं यहाँ उद्धृत किया जाता है। यह सम्पूर्ण गीत तो बहुत ही अश्लील है जिसकी चर्चा हम अन्यत्र करेंगे।

> लाल केस्या थारे मारे कद री प्रीत रे ?
> पाणिहे रे जाती को पल्लो खींचयो।
> लाल केस्या आयो रो बुलायो रे।

---

1 देखिए परिशिष्ट गीत-संख्या 11
2 सिर पर बाँधा जाने वाला सुहाग चिह्न

मोडो आयो रे लाल केश्या ॥
पछे दीधो रे हाऊ जी पीसणो रे ।[1]

लाल और केशिया राजस्थान के अश्लील गीतो के नायिका एव नायक हैं। उपरोक्त गीत मे लाल अपने प्रियनम केशिया से कहती है कि तेरे-मेरे कब की प्रीत है ? मैं तो पानी लाने के लिए जा रही थी और तूने मेरा आंचल खींचा। मैंने तुझे आधी रात होने पर बुलाया था किन्तु तू देर से आया। फिर भला क्या हो सकता था, क्योंकि सासुजी ने पीसणा दे दिया था जिसको वह पीस रही थी। अत पीसना छोडकर मिलन सभव नही था।

यहाँ हमे परकीया नायिका का चित्र देखने को मिलता है। वह अपने किसी प्रियतम से रूठ गई है। फिर अपने रूठने का कारण भी स्पष्ट करती है कि तुझे आधी रात को बुलाया था, फिर तू देरी स क्यों आया ? क्योंकि ढलती रात म तो सासु की आज्ञानुसार चक्की चलानी होती है। यहाँ राजस्थान की नारियो को चक्की चलाने की प्रथा का भी सकेत मिलता है।

अब हम दाम्पत्य जीवन से सम्बन्धित अन्तिम गीत का विवेचन करेंगे। स्त्री अपने प्रियतम से कह रही है कि हे रसिया ! फाल्गुन आ गया है—चार खूंटो मे और चारो दिशाओ मे। ऐसे म मैं सूत कात रही हूँ। सासुजी तो सूत की बनी हुई कूकडी[2] माँगती हैं और साजना उससे रूप माँग रहे हैं। तो इसका हल भी उसने सोच लिया है। वह दिन मे तो कूकडी तैयार करके दे देगी और रात्रि का प्रियतम को रूप देगी। राजस्थानी स्त्रियो को बेवडा[3] का बडा चाव होता है। चार चार मटकियाँ (या मिट्टी के घडे) सिर पर रखकर उन्हे बिना हाथों का सहारा दिए चलना नारी की कुशलता के लिए आवश्यक होता है। एक नाच विशेष मे भी राजस्थानी नारियाँ सिर पर पाँच-छ तक मटकियाँ रखकर नृत्य भी करती हैं। इसमे सतुलन की आवश्यकता होती है।

चार घरी रो बेवडो हो रसिया।
ता ऊपरी चालूं चाल।
सासूजी नरखे बेवडो हा रसिया।
ने साजन नरखे चाल हा रसिया ॥[4]

---

1 देखिए परिशिष्ट गीत-सख्या 12

2 चरखे के तकवे पर जा कतकर सूत एकत्र होता है वह कूकडी कहा जाता है।

3 बेवडा—स्त्रियाँ सिर पर जब एक से अधिक मटकियाँ या घडे पानी भरकर लाती हैं, बेवडा कह जाते हैं।

4 देखिए परिशिष्ट गीत-संख्या 13

यहाँ वह चार घड़ों का बेवड़ा लिए हुए है इसलिए उसकी चलने की गति मंथर है। ऐसी दशा में सासूजी तो उसके बेवड़े का निरीक्षण कर रही हैं और उसके साजन उसकी चाल का निरीक्षण कर रहे हैं। वह नारी अपनी दक्षता का परिचय देती हुई सास को बेवड़े में और पति को अपनी मंथर चाल दिखाकर संतुष्ट कर देती है। अब इसी गीत में नारी की सूर्यदेव से प्रार्थना देखिए—

> सूरज थाने पूजसी हा
> भर भर मोत्यां थाल।
> थ्योड़ो मोड़ो सो उगज्ये,
> म्हारा भँवर चढे दरबार॥

हे सूर्यदेव ! मैं तुम्हारा पूजन मोतियों के थाल सजा-सजाकर करती हूँ। आज तू थोड़ा-सा देर से उदय हो क्योंकि मेरे प्रियतम को दरबार में प्रातः होने पर चढ़ना होगा। नारी-हृदय में छिपे हुए पति-प्रेम को देखिए कि वह सूर्य से प्रार्थना करती है कि वह कुछ देर से उदय हो ताकि उनके मिलन-क्षणों में वृद्धि हो और वियोग का समय टल जाय।

(ब) पीहर सम्बन्धी गीत

विवाह के पश्चात् जो प्रथम फाल्गुन मास आता है उस पर नवविवाहिता वधू का अनिवार्य रूप से पीहर जाकर रहना है। यदि प्रथम फाल्गुन में नववधू अपनी ससुराल में ही रहे तो इसे अशुभ समझा जाता है। यह परम्परा ज्योतिष शास्त्र के नियमों पर आधारित है। नवविवाहित वधुओं को पीहर जाने की बड़ी उत्कण्ठा भी रहती है। इस परम्परा का समाजशास्त्रीय महत्त्व भी कम नहीं है। वधू जो कि अपने पीहर के वातावरण को छोड़कर आती है उसका 'सोशियल एडजस्टमेंट' (सामाजिक अनुकूलन) ससुराल में शीघ्र हो नहीं पाता है। यहाँ उसे नवीन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। इस नवीन वातावरण में नववधू को अपना सामाजिक अनुकूलन करने में समय लगता है। ससुराल के कष्ट तो सर्वविदित हैं ही। प्रत्येक वधू को सास, ननद, जेठानी, देवर, जेठ, श्वसुर आदि सभी की आज्ञानुसार कार्य करना होता है। ऐसी परिस्थितियों में यदि हमारे समाज के नियमों द्वारा नववधू को वैवाहिक जीवन के प्रथम वर्ष में अपने पीहर जाने की व्यवस्था न की जाती तो सम्भवतः नववधू को नवीन परिस्थितियों के साथ अनुकूलन करने की बड़ी समस्या रहती।

प्रत्येक नववधू अपने पीहर जाने के लिए आतुर रहती है। उसे अपने प्रियजनों की स्मृति व्यथित करती है। माता-पिता, भाई, सहेलियाँ, अपना घर—इन

मनको वह कैसे विस्मृत कर दे ? जहाँ कि उसे पूरी स्वतन्त्रता रहती है और अपनी भावनों पर शासन करने का भी अवसर प्राप्त होता है, वहाँ वह पूर्ण स्वतन्त्र होती है। इसलिए भी पीहर जाने का विशेष आकर्षण रहता है।

निम्न गीत में एक नववधू की पीहर जाने की उत्सुकता स्पष्ट दृष्टिगत होती है—

> नीलड़ी सणगार म्हारो दादाजी आयो।
> दादाजी म्हाने छोड मत जाइयो होली आइयो ॥[1]

नववधू के पीहर से लेने के लिए उसके दादाजी नीली घोड़ी का शृंगार करके आ पहुँचे हैं। उन्हें भी तो परम्परा का ध्यान है। किन्तु नववधू को आशंका है कि कहीं उसके दादाजी उसे छोड़कर न चले जावें। इसलिए वह उनसे अनुरोध करती है कि उसे छोड़ न जाएँ, होली आ गई है। दादाजी ही नहीं, उसका भाई काकाजी, पिताजी भी इस पुनीत अवसर पर लेने आ पहुँचे हैं। उनसे भी नव-विवाहिता का यही आग्रह है कि उसे छोड़कर न चले जावें। होली के अवसर पर नवविवाहिता यदि अपने पीहर में न हो तो उसके माता पिता आदि प्रियजनों को वैसे भी उसका अभाव खटकता है। जब परम्परा का भी सहयोग मिल जाता है तो नवपरिणीता का प्रथम फाल्गुन में पीहर रहना अनिवार्य ही हो जाता है।

उपर्युक्त गीत में दादाजी के स्थान पर विभिन्न परिवार के व्यक्तियों का नाम आ जाता है और गीत का कलेवर बढ़ता चला जाता है। काकाजी, भाईजी, बाबाजी आदि दादाजी के स्थान पर क्रमशः आते जाते हैं और गीत चलता रहता है। यह बात इसी गीत में या राजस्थानी गीतों में ही नहीं है, परन्तु लोकगीतों की यह सार्वभौम प्रवृत्ति है। पाश्चात्य लोकगीतों में भी इस तरह के उदाहरण विद्यमान हैं। निम्न भारतीय गीत में भी यही प्रवृत्ति है—

> चौपड़ काय को मँगाई रसिया, गोरी खेलन को तरसे ?
> ढोल्या काय को मँगाया, गोरी पोढन को तरसे ?

इस प्रकार चौपड तथा ढाल्या (पलंग) के स्थान पर अन्य विभिन्न वस्तुओं का उल्लेख किया जाता है और गीत का कलेवर बढ़ता चला जाता है। पश्चिमी लोकगीत का भी निम्न उदाहरण देखिए—

> ओ, फादर, हैव यू बोट माई गाउन।
> फादर हैव यू पेड माई फी?

---

1 देखिए परिशिष्ट गीत-संख्या 1

ओ हैव यू कम टू सी मी हुण।
ओन योनडर गलोवज ट्री।।

इस आग्ल भाषा के गीत मे भी फादर (पिता) के स्थान पर भाई, वहिन तथा परिवार के अन्य व्यक्तियों का उल्लेख आता है और गीत का कलेवर बढता चलता है। गीत की टेक या एक पक्ति को लेकर विभिन्न वस्तुओ का समावेश किया जाता है।

होली आ पहुँची है केवल चार दिन शेष रह गए हैं, वहिन अपने भाई के इस शुभ अवसर पर अतिथि बनकर जाना चाहती है, यथा—

होली आडा है दिन चार होली पावणी रे लाल।
म्हारी होली के बाल्यूं रे दोल्यूं गोऊँ रे चणा।
म्हारी होली रे गज-गज केस वीरा रे चालो पावणा।।[1]

अर्थात् होली के केवल चार दिन शेष रह गए है फिर होली तो स्वय पावणी (अतिथि) है। उसके चारो ओर गेहूँ और चने खड़े हैं। होली के बाल गज गज के हैं। ऐसे अवसर पर भैया के घर अतिथि बनकर चलना चाहिए।

उपर्युक्त गीत की पक्ति मे होली केवल चार दिन की अतिथि के रूप मे दिखाई गई है। लोकगीतो मे कुछ रूढ सख्याओ का प्रयोग पाया जाता है। चार सख्या का गणित की दृष्टि म कोई महत्त्व नही, किन्तु यह रूढ सख्या है जो लोकगीतो तथा लोकजीवन म स्थान स्थान पर प्रयुक्त होती है। निम्न उदाहरणो से इसका स्पष्टीकरण होगा—

जोवनियो चार दिना रो मिजमान।।

यह एक भजन की पक्ति है जिसम यौवन को चार दिना का महमान बताया गया है। इसी प्रकार कहावत मे भी—

चार दिन की चाँदनी फिर वही अँधेरी रात।।

इस प्रकार स्पष्ट ही है कि चार लोकजीवन की रूढ सख्या है जिसका लोक-गीतो म स्थान-स्थान पर प्रयोग मिलता है।

लोकगीतो मे अतिशयोक्तियो का प्रयोग भी रूढिगत है। उपरोक्त गीत मे होली के केशो की लम्बाई गज-गज है। भावना-लोक मे ऐसा लगता है कि कृपणता के लिए तो स्थान ही नही है। जहाँ भी किसी वस्तु का अकन होगा उसम अतिशयोक्ति का प्रयोग अवश्य होगा। ऐसा लगता है मानो होली क केश गज-गज से कम लम्बाई के हो ही नही सकते थे।

---

1 देखिए परिशिष्ट गीत-सख्या 2

बहिन भाई के यहाँ अतिथि बनकर पहुँच ही गई, किन्तु ननद-भावज की ईर्ष्या तो सर्वविदित है। फिर यहाँ भाभी क्यों नहीं अपने अन्तर की ईर्ष्या को प्रगट करे—

> बीरो कहे बाई ने चुँदड़ली ओढाई दूँ।
> भावज कहे बाई ने फाटोड़ो टूल॥
> बीरो कहे बाई ने ठेठ पहुँचाई दूँ।
> भावज कहे बाई ने आदेटे पहुँचाई दो॥

होली पर्व समाप्त हुआ, अब बहिन की विदाई की बात आई। भाई ने कहा कि बहिन को चुनरी ओढ़ाकर विदा किया जावे, किन्तु भावज ने कहा—नहीं, ननदी को फटी हुई टूल (चुनरी) ओढाकर विदा कर दीजिए। भाई कहने लगे कि बहिन को इसके घर तक छोड आऊँ। इस पर भाभी ने कहा कि इन्हें आधे मार्ग तक छोड आइए। इन पक्तियों में हम लोकजीवन की वास्तविक स्थिति का परिचय प्राप्त होता है। भारतीय परम्परानुसार अपनी बहिन या बेटी घर पर आती है तो उसे सामर्थ्यानुसार वस्त्राभूषण देकर विदा किया जाता है। इसलिए ही भाई ने कहा कि बहिन को चुनरी ओढाकर विदा किया जावे, किन्तु भावज ईर्ष्यालु है, फटी-पुरानी टूल (चुनरी) देकर विदा कर देने की सलाह देती है।

एक बहिन ससुराल में है और उसका भाई विदेश गया हुआ है। अब कौन उस बहिन को लेने के लिए जाए? कौन होली के कारण शृंगार करे और बहिन को लेने के लिए जाए? सीधे सादे शब्दों में कितनी मार्मिक व्यंजना है—

> कस्यो बीरो धोवे ए धोवतियाँ ?
> कस्यो बीरो करे ए शृणगार ?
> होली थारे कारणे।
> कस्यो बीरो बेनड लावा जाय होली थारे कारणे ?
> ओ तो गयो परदेशाँ होली थारे कारणे॥[1]

अर्थात् कौन भाई अपनी धोती धोए तथा शृंगार करे होली के कारण ? कौन भाई अपनी बहिन को लेने के लिए जाए होली के कारण ? वह तो विदेश गया हुआ है। वास्तव में जब अन्य सभी बहिनों को उनके भाई लेने पहुँच जावें और यदि किसी बहिन का भाई विदेश में होने के कारण बहिन को लेने आने में असमर्थ हो, तो उस बहिन के हृदय में अवश्य वेदना होगी। यही वेदना उक्त गीत की पक्तियों में स्पष्ट है।

---

1 देखिए परिशिष्ट गीत-सख्या 3

होली के आगमन से पूर्व युवक अपने लिए चग या चाग[1] मढ़वा लेते हैं। एक लकड़ी के गोल घेरे पर खाल (केवल एक तरफ) मढ दी जाती है। इस सगीत वाद्य को पुरुष गीत गाते समय बजाते हैं। स्त्रियाँ भी एकान्त पाकर चग बजाती हैं तथा उस पर विभिन्न गीत गाती हैं। किसी बहिन के भाई ने चग मढाई है बहिन कहती है कि मेरे भाई ने बजने वाली चग मढवाई है। रेगर[2] चग मढकर ले आया है। चग रँगीला है तथा बजने वाला है। मेरा वीर (भाई) चग बजा रहा है और उसके साथी धमाल गा रहे हैं।

यह चग अँगुलियो से बजाया जाता है। यह चग मूँदड़ी (अँगूठी) से भी बजता है। चग पूणचा (कलाई) की शक्ति पर बजता है। यह चग बहुत ही रँगीला है और बजने वाला है। चग राजस्थान मे किन-किन भागो मे बजाया जाता है इसका भी निर्देशन गीत की इन पक्तियो मे है—

चग बीकाणे बाजे,
चग जोधाणे बाजे।
बाजे बाजे चग अजमेर ए,
रँगीलो चग बाजणो।।[3]

चग बीकानेर, जोधपुर तथा अजमेर मे बजता है। चग रँगीला है तथा बजने वाला है।

प्रस्तुत गीत मे पुनरावृत्तियाँ बहुत हैं। लोकगीत मे कुछ पक्तियो मे एक-दो शब्द बदलकर उन्ही पक्तियो को पुनः गाया जाता है। इसमे सदेह नही कि पुनरावृत्ति के कारण उस गीत मे भाव-सौदर्य की न्यूनता खटकने लगती है, किन्तु लोकगीतो को मौलिक परम्परा मे जीवित रखने के लिए ये पुनरावृत्तियाँ आवश्यक हैं। ससार के सभी लोकगीतो मे पुनरावृत्तियाँ मिलती हैं।

निम्न गीत में हमें एक बहिन का भ्रातृत्व प्रेम अनूठे प्रेम के रूप मे प्राप्त होता है। विभिन्न लोकगीतो मे हमे जैसी अप्रासगिकता देखने को मिलती है वैसी ही अप्रासगिकता इस गीत मे भी है। गीत की आरम्भिक पक्तियो मे होली को सबोधित करते हुए बहिन कहती है कि हे होली! तेरा तिलक लम्बा है और उसकी डोरी (रस्सी) भी लम्बी है। अपने भाई का नाम लेकर कहती है कि वह मेरा भाई उस डोर (रस्सो) को हिलाता है। मेरे उस भैया की पत्नी गौर वर्ण की है।

यहाँ वही पुनरावृत्ति वाली बात आ जाती है। विभिन्न भाइयो का नाम लेकर

1 सगीत वाद्य
2 चमडे का काम करने वाली एक जाति विशेष जो शूद्र समझी जाती है।
3 देखिए परिशिष्ट गीत-सख्या 14

गीत का कलेवर बढ़ता चला जाता है। आगे कहती है—यदि उनके गोरी बहू है तो वह दही बिलोएगी, कँवरजी तो होली को गए हैं। कँवरजी को तो पेचा (पगड़ी) बँधवाई जाएगी और रानियों को साड़ी।

यहाँ हम देखते हैं कि अप्रासंगिकता गीत में अनायास ही आ गई है। न जाने क्यों भैया की पत्नी का गीत के कलेवर में समावेश किया गया और उसके दही मथने की बात कही गई। किन्तु इस अप्रासंगिकता के होते हुए भी हमें गीत में इसका समावेश खटकता नहीं है, बल्कि ऐसा लगता है कि बिना इस प्रसंग का समावेश किए यह गीत, गीत नहीं बन पाता। साथ ही गोरी है तो दही बिलोसी कहकर उस सुन्दर भाभी का महत्त्व अस्वीकार कर दिया गया है। जिस भाभी को ऊपर की पंक्ति में सुन्दर तथा गौरवर्ण की बताया है उसी के लिए कह दिया है कि यदि वह सुन्दर है तो क्या करेगी ? गोरी है तो दही मथेगी। किन्तु यह अर्थ हम व्यंजना द्वारा ही ग्रहण कर सकते हैं अभिधार्थ में यह हमें अवश्य अप्रासंगिक लगता है। अब बहिन अपने भाई की जिस आतुरता से प्रतीक्षा कर रही है उसका रूप देखिए—

> बीरा डागले चढ़ देखूँ रे क, जो कोई आवे लेण ने।
> बीरा लाल दुमालो रेक···आवे लेण ने ॥[1]

अर्थात् रे वीर ! मैं छत पर चढ़कर देखती हूँ यदि कोई मुझे पीहर से लेने आवे। फिर यह बीरा लाल दुमालेरेक कह कर आने वाले भाई का नाम लेती हुई कहती है कि अमुक भाई लेने के लिए आ रहा है।

यहाँ पुनरावृत्ति के सम्बन्ध में पुनः एक बात कहना अनुचित न होगा कि जब इस गीत को स्त्रियाँ गाती हैं तो वे अपने जितने भी भाई होते हैं उन सभी का नाम इस स्थान पर लेती हैं। यहाँ तक कि दूर के सम्बन्ध में लगने वाले भाइयों का नाम यहाँ प्रत्येक गाने वाली स्त्री लेती है तथा गीत अनिश्चित काल तक चलता रहता है।

उक्त गीत में निरर्थक शब्द-प्रयोग भी देखा जाता है। रेक शब्द केवल तुक मिलाने अथवा लय के साथ गाए जाने के हेतु यहाँ प्रयुक्त हुआ है। यही नहीं, बीरा लाला दुमालो रेक पूरी पंक्ति अर्थहीन है किन्तु यह लय मिलाने के लिए उपयुक्त है। लोकगीत रचयिताओं के पास सीमित शब्द-भंडार होता है। शब्दों के अभाव तथा भावों के आधिक्य के कारण तथा शब्द-चातुर्य के अभाव की पूर्ति हेतु स्वरों की सहायता तथा निरर्थक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इससे ध्वनि-माधुर्य सहज ही उत्पन्न हो जाता है तथा लय द्वारा भावों के भार को वहन करने की

---

1. देखिए परिशिष्ट गीत-संख्या 15

गर्भित गीत की पंक्तियों में आ जाती है।

इसी गीत में आगे देखिए—बहिन की कल्पना में उसका भाई आ रहा है तो फिर बहिन भी क्यों न अपने भाई की सुख-सुविधा का ध्यान रखे, यथा—

> बीरा हारयो है तो बैठो रेक, ठण्डी छाया खजूर की।
> बीरा भूखो है तो जीमी रेव, रतन कचोले चूरमो।।

अर्थात् हे भैया ! यदि तू थक गया हो तो खजूर की ठण्डी छाया में विश्राम करना। यदि तुझे भूख लगी हो तो तू रत्न-कटोरे में चुरमा खाना। यही नहीं, वह आगे कहती है कि यदि तुझे प्यास लगी हो तो तू कुम्हार के नये घड़े में से जल पीना।

लोकगीतों में स्थान-स्थान पर अतिशयोक्ति मिलती है। ऐसा लगता है मानो भाव-जगत में रत्न-हीरे-मोती, चांदी आदि बहुमूल्य वस्तुओं का अभाव है ही नहीं। किन्तु अतिशयोक्ति के बाद भी यथार्थ की भूमि पर से पैर नहीं उखड जाते हैं तभी तो बहिन भाई से कह रही है—

> बीरा बेगो बेगो जीमि रेव, सासू नणद जलोकड़ी।
> बीरा तने देसी गाल्यां रे मने देसी ओनमां।।

कि वह जल्दी-जल्दी खा ले क्योंकि सासु तथा नणद ईर्ष्यालु है। वे तुझे गालियाँ देंगी और मुझे उपालम्भ देंगी। बहिन अपने भाई को भाव-जगत में रत्न-कटोरे में चूरमा खिलाए, किन्तु वह सास-ननद के ईर्ष्यालु स्वभाव को कैसे विस्मृत करे ? यथार्थ की कठोरता से दूर कैसे जा सकती है ?

उपर्युक्त गीत पीहर सम्बन्धी होली के गीत हैं जिनमें हमें भाई-बहिन के पवित्र प्रेम का सुन्दर रूप देखने को मिलता है। वैसे इन गीतों में केवल भाई-बहिन ही नहीं, माता-पिता, दादा, काका, भावज आदि के विभिन्न स्वरूपों का भी चित्रण प्राप्त होता है।

(2) बालक बालिकाओं के गीत

होली के मंगलमय पर्व पर जिस समय चंग की थाप पर गीतों की स्वरलहरी दिगन्त में गूँजती है और ढोले के डंके की चोट पर गैर नृत्य आरम्भ हो जाता है, तो बाल-हृदय अपनी स्वाभाविक अनुकरण-प्रवृत्ति का त्याग किस प्रकार कर सकता है ? बाल-हृदय से भी गीतों के स्वर स्वत. फूट पड़ते हैं।

डा० सत्येन्द्र ने लोकगीतों का वर्गीकरण करते हुए अवस्था-भेद से जो वर्गीकरण किया है उसमें लिखा है कि लोकगीतों में से कुछ गीत ऐसे भी मिलते हैं जो केवल बच्चों से ही सम्बन्धित होते हैं जैसे टेसू के गीत। उन्हें बड़े-बूढ़े गाते अच्छे

नही लगते। बच्चो के गीतो के अतिरिक्त कुछ गीतो की प्रकृति ही ऐसी होती है कि वे नौजवानो के मुख से ही शोभा पाते हैं जैसे रसिया।[1]

(2) बालिकाओं के गीत

जिस समय गैर नृत्य चलता है उस समय स्त्रिया के अतिरिक्त बालिकाएँ भी गीत गाती हैं। भाई-बहिन का प्रेम लोकगीतो मे स्थान-स्थान पर पाया जाता है। चाहे वे गीत होली के हो, दीवाली के हो, तीज के हो, घुडले के हो या अन्य किसी अवसर पर गाए जाते हो, किन्तु बहिन-भाई के प्रेम का निरूपण सर्वत्र पाया जाता है। नारी के चार रूप हम वैसे भी जीवन मे देखने को मिलते है—बहिन, पुत्री, माँ एव पत्नी। कहना न होगा कि बालिकावस्था म नारी का बहिन तथा पुत्री का रूप ही हमारे सम्मुख आता है।

सर्वप्रथम हम बहिन के रूप म बालिकाओ के गीतो का विवेचन करेंगे। भाई गैर नाच रहा है। बहिन अपने भाई का स्वरूप गीत म चित्रित करती है। गीत म प्रश्नोत्तर शैली को अपनाया गया है जो कि लोकगीता की प्रचलित एव प्रसिद्ध शैली है—

ओ कुण बीरा छोगा राले ?
ओ कुण बीरो कणिया गैर नाचे ?
होली थारे कारणे॥[2]

यह कौन भाई है जो अपनी पगडी के छोगे (एक भाग) को डाले हुए है ? यह कौन भाई है जो डडियो से गैर नाच रहा है ? होली के कारण। अब इस प्रश्न का उत्तर भी देखिए—

कण गैरियां मे हगला ही नाचे।
..[3] बीरो छोगा राले ए होली थारे कारणे।

हे होली ! तेरे लिए सभी लोग गैर नाच रहे हैं। अमुक भाई अपनी पगडी के एक भाग को डाले हुए हैं अर्थात् पगडी को सुन्दर रूप से बाँध रखा है।

उक्त गीत मे हमे पुनरावृत्ति मिलती है। जहाँ स्थान खाली छोडा गया है उस स्थान पर विभिन्न भाइयो का नाम लिया जाता है और गीत का क्रम आगे बढ़ता रहता है। इस प्रकार गीत की विषय-सामग्री वही होते हुए भी गीत काफी समय तक चलता है। यह पुनरावृत्ति हमे राजस्थान की प्रसिद्ध लोकगाथा ढोला

1 लोक साहित्य विज्ञान—डा० सत्येन्द्र, पृ० 395
2 देखिए परिशिष्ट गीत-संख्या 4
3 यहाँ भाइयो का नाम लिया जाता है।

मारू रा दूहा में भी दृष्टिगत होती है। उक्त ग्रन्थ के सम्पादक—ठाकुर रामसिंह, सूर्य करण पारीक तथा नरोत्तमदास स्वामी ने ग्रन्थ की भूमिका भाग म लोकगीतो के बाह्य स्वरूप की स्मरण रखने योग्य बातो का उल्लेख करते हुए पुनरावृत्ति के लिए आवृत्ति (रिपीटेशन) शब्द का प्रयोग किया है तथा कुछ उदाहरण भी दिए हैं[1]—

> बीजुलियाँ चहलावलि आभय आभय कोडि।
> कद रे मिलाऊँली सज्जना कस कचूकी छोडि ।।46।।
> बीजुलियाँ चहलावलि आभई आभई च्यारि।
> कद रे मिलऊँली सज्जना लाँबी बाँह पसारि ।।45।।

इन उदाहरणो के बाद उन्होंने लिखा है—यही प्रयोग ग्रन्थ के और स्थलो मे भी मिलता है। किसी एक बात अथवा भाव को बार-बार दुहराकर थोडे-स हेर-फेर के साथ उसी भाषा म कहना प्राचीन ढग की कविता म बहुत पाया जाता है। सामुदायिक रचना के सिवा इसका कारण यह भी हो सकता है कि विषय की ओर विशेष ध्यान आकर्षित करने के लिए दुहराना आवश्यक होता था।

बालिका गीतो म हम बाल-सुलभ चपलता एव विनोद भी देखने को मिलता है। देखिए होली को बालिकाएँ खडी रहने का अनुरोध कर रही हैं—

> उभी रहिए ए होली माता थारे झालरो गडाऊ।
> झालरिया ने काँई करूँ म्हारे डावरियो डग डग हाले।
> राबोडी कूण बाँचे ।।[2]

अर्थात् हे होली माता ! तू खडी रह मैं तेरे लिए झालरा (गले म पहनने का आभूषण विशेष) गढा दूँगी। होली उत्तर देती है कि मैं झालरा से क्या करूँ बूढा (डावरा) तो जर्जर अवस्था म है राबोडी कौन बाँचेगा।

इन पक्तियो मे हम यह सकेत मिलता है कि होली का पति बूढा है। तभी तो वह कहती है कि मैं झालरा स क्या करूँ, मेरा पति बूढा हो चला है, अब मेरे लिए शृगार प्रसाधन तथा आभूषणो का कोई महत्व नही। राबोडो कूण बाँचे निरर्थक शब्द हैं जिनका गीत को लय तथा गति देने के लिए समावेश कर लिया गया है। इस सम्बन्ध म कैन्नेयरिच मड के कथन का उद्धरण देना अनुचित न होगा।

---

1 ढोला मारू रा दूहा भूमिका भाग, पृष्ठ 41
2 देखिए परिशिष्ट गीत सख्या 9

सभी लोकगीतों में सामान्यतः यह बात मिलती है कि शब्द गौण होते हैं लय से और इसी कारण बहुधा यह कहा जाता है कि यह लय ही है जिसका सर्वापेक्षा अधिक महत्त्व था। यह विश्वास सत्य से बहुत दूर है। सत्य यह है कि कंठ से कंठ पर उतरते हुए शब्दों ने क्रमशः लघु विकारों और संशोधनों को झेला है। संगीत अधिक यथावत् रूप से स्मृत रहा है क्योंकि लोकनायक के लिए गीत का सम्पूर्ण अर्थ आवेग संपृक्त (इमोशनल) होता है उतना नैगमिक (लोजीकल) नहीं।[1]

जब होली ने कहा कि मेरा तो पति बूढ़ा है, मेरे लिए झालरे का क्या महत्त्व, तो फिर बालिकाओं का व्यंग्य-मिश्रित विनोद देखिए—

> थांने थारा भाई भतीजा मोटे घर परणाई।
> मोटा घरां रा तकडिया तोला सेर सोनो तोले।।

अर्थात् यदि तेरे लिए आभूषणों का महत्त्व नहीं है तो यह तो तेरे भाई-भतीजों की भूल है कि उन्होंने तुझे बड़े घर के बूढ़े से ब्याह दिया। मोटे घर के तराजू एवं बाट सेर सोना जो तोलते हैं। यहाँ बेमेल विवाह-पद्धति पर करारा व्यंग्य किया गया है।

होली के लिए जो काष्ट स्तम्भ लाया गया है उसका भी वर्णन बालिकाओं ने अपने गीतों में किया है—

> काट्यो तो वाढयो डाडोकेर को जी।
> काट्यो छै होली तांण थाम।।
> ओक बरसे बरसोदण होली पावणी जे।
> काटण वाला म्हारो समरथ वीर।।[2]

उक्त गीत में हमें बहिन का भाई के प्रति प्रेम-भाव दृष्टिगोचर होता है। होली के लिए केर (वृक्ष) का स्तम्भ काटकर लाया गया है। होली अतिथि है। होली के लिए जो स्तम्भ काटा गया है वह बहिन के समर्थ वीर द्वारा काटा गया है।

होली के अवसर पर बालिकाएँ, वस्त्राभूषणों से सज-धजकर, मिल-जुलकर गाती-बजाती, खेलती-कूदती और नाचती हैं। लूर या लूमर या घूमर एक नाच का नाम है जिसमें स्त्रियाँ हाथ बाँधकर चक्राकार नाचती हैं। कहीं-कहीं पर डंडों की ताल पर भी नाच होता है। गुजरात में इस प्रकार के नृत्य का अधिक प्रचार है जिसे गरबा नृत्य के नाम से अभिहित किया जाता है।

---

1 पोइट्री एण्ड दी पीपिल, पृ॰ 184

2. देखिए परिशिष्ट गीत संख्या 17

एक बालिका गीत म इस नृत्य का सकेत मिलता है। होली आई है। सहेलियो, आओ, मिलकर होली खेलें। किसी ने बारीक चुनड़ी ओढ़ी है, किसी ने दक्षिणी चीर। सहेलियों, आओ मिलकर लूर नृत्य करें। इसम आगे देखिए—

> कोई-कोई पहरयाँ रिमझिम बिछिया।
> कोई-कोई पहरयाँ पायलड़ी॥
> होली आइ ए सहेल्याँ मिल खेलाँ लूर। हाली आईए॥[1]

अर्थात् किसी-किसी ने रुनझुन बजने वाले नुपूर पहने हैं किसी-किसी ने झनकारने वाली पायल। नूपुर बड़े रुनझुन बजते हैं और पायल छमछमाती हुई सुहावनी लगती है। होली आई है। सखियो आओ, सब मिलकर होली खेलें।

ऐसे गीतों म गम्भीर और सूक्ष्म भावों अथवा बयानकों के स्थान पर स्वच्छन्द एव सरल सार्वजनिक आह्लाद का व्यापक भाव रहता है। कल्पना की उड़ाना की यहाँ आवश्यकता नहीं रहती। यह स्वच्छदता सरलता तथा सार्वजनिक उदार भावना काव्य में इस मात्रा म उपलब्ध नहीं होती हैं।

बालकों के गीत

होली के पर्व पर राजस्थान म एक अनूठी प्रथा प्रचलित है। होली जला देन के पश्चात् रात्रि मे गाँव के बालक एकत्र होकर उस प्रत्येक घर पर जाते हैं, जिसमें कि गत होली के बाद किसी बालक का जन्म हुआ है तथा वह जीवित है। उस घर पर जाने पर बालक की माता बालक या बालिका को गोद म लेकर द्वार म बैठ जाती है। ग्रामीण बालकों (जो कि अपने साथ म एक एक डडिया लेकर आते हैं) मे से कोई दो बालक एक मोटे डडे को दरवाजे के बीच मे पकडकर खड़े हो जाते हैं। द्वार के भीतरी भाग मे माता अपने बालक को गोद मे लेकर बैठती है तथा ग्रामीण बालकों का समूह द्वार के बाहरी भाग मे खड़ा रहता है। उस समय आटे से वेदी बनाई जाती है। फिर ये ग्रामीण बालक उस द्वार के बीच मे जो डडा लेकर दो बालक रहते हैं उस पर अपने-अपने डडियो से एक साथ आघात करते हैं, जिससे कि एक ध्वनि होती है। इस आघात के साथ ही साथ निम्न गीत भी आरम्भ किया जाता है—

> हरि-हरि हरियो ले।
> ज्यूँ-ज्यूँ चम्पा लहरियाँ ले।
> एडियों रा ऐडा खेडा।
> कमली गाय कमली गाय॥

---

2 दखिए परिशिष्ट गीत-सख्या 21

बारह जोजन चरतां जाय ।
चरतां-चरतां मागो होग ।
हिंगलियो होना रो होग ।
' एतरो रे एतरो ।।[1]

इसी गीत को सात बार गाया जाता है और इसके बाद गृहस्वामी उन बालको को कुछ मिठाई आदि देकर विदा करता है । इस सब प्रक्रिया को 'ढूंढने' की सज्ञा से अभिहित किया जाता है । इस परम्परा की पृष्ठभूमि मे कौन-सा तथ्य छिपा हुआ है, यह तो शोध का विषय है । इसके सम्बन्ध में लेखक ने ग्रामीण जनता मे विभिन्न लोगो से सम्पर्क भी स्थापित किया और यह जानने का प्रयत्न किया कि इस परम्परा का आधार क्या है, किन्तु इसका कोई समाधान प्राप्त नही हुआ ।

इस गीत की व्याख्या कर देना अनुचित न होगा—हरी हरी हरियो ले—निरर्थक शब्द हैं—जिनका कोई अर्थ प्राप्य नही है, केवल लय के लिए इस पक्ति का गीत म समावेश हुआ है । जिस प्रकार चम्पा लहराती है । ऐडे तथा सेडे एडियो के हैं । कमली गाय— कमली गाय चरती जा रही है । वह चरते-चरते बारह योजन दूर चली गई । चरते चरते उसका सीग टूट गया । उसका सीग भी सोने का सीग था । फिर उस बालक का विन्दुओ के स्थान पर नाम लेकर अपने-अपने डडियों को ऊपर उठाते हुए यह कहते हैं कि अमुक इतना रे इतना ।

इसकी अन्तिम पक्ति से ऐसा पता चलता है कि यह परम्परा उस नवजात बालक के चिरायु होने की मगल कामना करने के लिए प्रचलित है ।

इसकी एक पक्ति मे ऐडा शब्द आया है । ऐडा भी मगरे (अजमेर-मेरवाडा) की एक परम्परा है । होली के दिन तथा होली के दो दिन पूर्व, होली के एक दो दिन बाद तक भी यहाँ एक सामूहिक आखेट पर जाने की परम्परा है । सुबह सभी ग्रामीण लोग अपनी गैर या चौहटे म एकत्र होते हैं तथा वहाँ गैर नृत्य होता है । कुछ देर बाद गैर नृत्य समाप्त कर दिया जाता है और फिर सभी लोगो पर गुलाल तथा अबीर छिडकी जाती है । इसके बाद चग लेकर लोग उस पर वीर रस मे परिपूर्ण गीत गाते हुए चौहटे मे रवाना होते हैं । उन सभी के पास अपनी-अपनी एक लकडी होती है । उनके पीछे ग्रामीण स्त्रियो का समूह होता है । वे भी होली सम्बन्धी गीत गाती हुई उनके पीछे रवाना होती हैं । इस प्रकार यह एक शानदार जलूस निकलता है, जिसके आगे क्षुद्र जाति के लोग नगी तलवारो तथा रूमाल, अँगोछे, लकडियाँ आदि लेकर नाचते हुए चलते हैं । जब यह जलूस गाँव के बाहर

1 देखिए परिशिष्ट गीत-सख्या 24

पहुँच जाता है तो यहाँ स सभी पुरुष चग स्त्रियो को देकर आखेट हेतु जगल मे चले जाते हैं।

अब एकान्त पाकर स्त्रियाँ चग बजाती तथा नाचती हैं। इस समय ये भी चग पर अश्लील गीत गाती है। गाँव म पुरुष वर्ग का कोई भी व्यक्ति नही रह सकता कवल पाँच या छ साल तक के बच्चे अवश्य रहते हैं। एसी परिस्थिति म स्त्रियो को पूर्ण स्वच्छदता मिलती है तथा व विभिन्न प्रकार स दिन भर हँसी-विनोद करती रहती है।

पुरुष जो कि सामूहिक आखेट पर जाते है खरगोश, हिरन आदि विभिन्न वन्य जन्तुओ को मारकर लाते है। यही प्रथा एडा के नाम म विख्यात है जिसका उपर्युक्त गीत में प्रयोग हुआ है। इस परम्परा के पीछे मानव की आदिम (हिंसक) प्रवृत्ति कार्य करती है तथा राजस्थान तो वीर भूमि के नाम से विख्यात है। अब यदि राजस्थानी पुरुष अपना युद्ध-कौशल प्रदर्शित न कर सके तो वह कम से कम आखेट द्वारा अपनी वीर भावनाओ का प्रदर्शन तो कर सकता है।

(3) पुरुषों के गीत

हम उपर्युक्त होली के गीतो के विभाजन में यह कह आए हैं कि पुरुषो के दो प्रकार के गीत होते हैं—वीर गीत तथा अश्लील गीत। इन दोनो प्रकार के गीतो को पुरुष चग पर गाते हैं।

(क) वीर गीत

होली के शुभ अवसर पर राजस्थानी वीर अपनी वीर भावना का कैसे परित्याग कर दें? राजस्थानी पुरुष के ये दो रूप बडे अनूठे हैं। एक ओर ये शृगार-पूर्ण अश्लील गीत गाते हैं तो दूसरी ओर वीरतापूर्ण गीत। इन वीर गीतो का केवल होली के अवसर पर ही महत्व नही है, किन्तु इन गीतो का ऐतिहासिक महत्व भी है। सन् 1857 की क्रान्ति म भाग लेन वाले विभिन्न आजादी के दीवाने वीरों को जिनको कि इतिहास म या तो स्थान ही नही मिला और यदि मिला तो उन्हे चोर-लुटेरे तथा डाकू के रूप म। यही नही 1857 के स्वतत्रता-सग्राम को इतिहास म विद्रोह की सज्ञा दी है। जब यह स्वतत्रता-सग्राम असफल हो गया तो भारत के साहित्यकारो का मस्तिष्क पराजित होने के कारण जड हो गया। 19वी शताब्दी के कवियो में कोई ऐसा कवि नही हुआ जिसने इस स्वतत्रता-सग्राम के प्रति दो शब्द भी कहे हों। जब साहित्य अपना पद त्याग कर राजसत्ता का कीर्तिगान करने लगता है तब उस साहित्य में निर्भीकता तथा क्रान्तदर्शी शक्ति का ह्रास हो जाता है। जब कभी किसी साहित्यकार न आत्मलाभ को तिलाजलि दी है तभी उसने जनजीवन में क्रान्ति को जन्म दिया है।

जब साहित्य अपनी हीन दशा को प्राप्त हुआ तो जन-मानस ने इस स्वतन्त्रता-संग्राम को अमर बना दिया। लोकभावना की यह शाश्वत प्रवृत्ति है कि वह स्वच्छदतापूर्वक, सुख दुख, उल्लास-वेदना को प्रकट करता है। लोकमानस को राजसत्ता जैसी बाह्य परिस्थितियाँ कम प्रभावित कर सकी है। लोकमानस की धारणाओ को बाह्य शक्ति के प्रभाव मे दबाया या कुचला नही जा सकता। सन् 57 की क्रान्ति के साथ तो जनता का भावात्मक सम्बन्ध था, वह लिखित इतिहास अथवा साहित्य का अनुसरण किस प्रकार करती ? उसने इस क्रान्ति के वास्तविक एव सत्य स्वरूप को लोकगीतो द्वारा सुरक्षित रखा है। साथ ही इन लोकगीतो मे अन्याय के विरुद्ध लडने वालो के साथ सहानुभूति दिखाई गई है, उनका अभिनन्दन किया गया है, साथ ही देशद्रोही, कायरो को ताडना भी मिली है। इन लोकगीतो ने साहित्य के वास्तविक स्वरूप को सुरक्षित रखा है।

इस क्रान्ति से सम्बन्धित गीत विभिन्न प्रदेशो मे पाए जाते हैं तथा यहाँ के प्रसिद्ध वीरो का उनमे अभिनन्दन किया गया है। इसी प्रकार राजस्थान मे भी इस क्रान्ति मे सम्मिलित होने वाले वीरो को लोकगायक ने सम्मान दिया है तथा देशद्रोही लोगो की भर्त्सना भी की है।

सन् 1857 के स्वतन्त्रता-संग्राम मे भाग लेने वाले वीरो मे राजस्थान के आउवा ठाकुर कुशालसिंहजी का नाम अग्रण्य है। इनके साथ इस क्रान्ति मे भाग लेने वाले मारवाड, आसोप, गूलर, लाम्बिया, आसिंद आदि के ठाकुर तथा वीर सरदार भी थे जिनका नाम इस वीर सेनानी के साथ ही सम्मानपूर्वक लिया जाता है। जोधपुर तथा रामपुर आदि के राजाओ ने आउवा ठाकुर को कोई सहायता नही दी, जिनकी भर्त्सना इन लोकगीतो मे उपलब्ध है। इस जन क्रान्ति मे सम्बन्धित बहुत-से लोकगीत हैं जो होली के अवसर पर घर घर गाए जाते हैं। उनमे से कुछ प्रमुख गीतो का हम यहाँ विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

निम्न लोकगीत की आरम्भिक पंक्तियो मे आउवा के ठाकुर का भव्य रूप देखिए—

" आऊ वालो बनडो रे ठाकुर।
बैठो बैठो मूँछियाँ मे वल घाले रे।।
बैठो बैठो ठाकराँ ने बोल भावे ओ।
मरणो हालरियो।।[1]

अर्थात् आउवा का वीर ठाकुर बैठा-बैठा अपनी मूँछो पर ताव दे रहा है तथा यह ठाकुरो को ताने मार रहा है। हमे मरने के हेतु प्रस्तुत हो जाना चाहिए।

1. देखिए परिशिष्ट गीत-संख्या 28

गीत के आगे की पंक्तियाँ हैं—हमें मरने के लिए प्रस्तुत हो जाना चाहिए। फिर आउवा ठाकुर को सम्बोधन करके कहते हैं—हे आउ के ठाकुर ! तेरी हाल[1] पर मेढ़ी[2] है, तेरी मृत्यु अब समीप है। इस पर आउवा ठाकुर का उत्तर है कि—एक नगारा तो मेरे भाइयों के परिवार में बज रहा है। दूसरा नगारा ठेठ युद्धभूमि में बज रहा है अर्थात् भाइयों का नगारा या एक परिवार के साथ होने का संकेत। आगे कहता है—

> भाइयाँ भावे तो भायो वेगा आज्यो रे।
> केसर न कसूबो रग कडाओ में घोलो रे॥
> राठोड़ो रा रूमालिया रँगाई लिज्यो रे।
> मरणा हालरियो॥

कि हे भाइयो ! यदि तुम्हें अपने बधु बांधवों में प्रेम है तो शीघ्र चले आओ। केसरिया तथा कसूबिया रग कडाहों (लोहे का बना बड़ा भारी बर्तन) में घोलो। उस रग से राठौड़ों के रूमाल रँगवा दो। मरण त्योहार हेतु हमे प्रस्तुत होना है। यहाँ केसरिया रग घोलने से तात्पर्य केसरिया बाना धारण करने से है जो कि इतिहासप्रसिद्ध वेष-भूषा है जिसे योद्धा युद्ध में प्रस्थान करने से पूर्व धारण करते हैं। उसी परम्परा का यही संकेत है कि अब केसरिया बाना धारण करना है अर्थात् युद्ध से लौटने की कोई सम्भावना नहीं है।

> आउ न लडाई लागी औ मरणो हालरियो।
> एक तो परवानो म्हारो भाइया में मेलो रे॥
> दूजोड़ो पर-वानो म्हारो जोधाणे मेलो रे।
> तीजोड़ो परवानो म्हारे रायपुर न मेलो रे॥

आउ में युद्ध आरम्भ हो गया है इसलिए अब मरने के लिए प्रस्तुत होओ। एक ऐसा सन्देश तो मेरे भाइयों को भेजो। दूसरा सन्देश मेरा जोधाणे (जोधपुर) को भेजो और तीसरा परवाना (सन्देश) मेरा रायपुर में भेजो।

रायपुर के राजा ने युद्ध में सम्मिलित होने के लिए अस्वीकार कर दिया तो उसकी भर्त्सना देखिए—

> रायपुर रो राडियो मरणेऊँ डरियो रे काची छाती रो॥

रायपुर का राडिया (नपुंसक) राजा मरने से डर गया। वह कच्ची छाती (दिल) का है, अर्थात् कायर है। युद्ध आरम्भ होने से पूर्व आउवा नरेश व्यवस्था

---

1 नीचे की मंजिल का कमरा।

2 दूसरी मंजिल पर बना हुआ मकान जो कि मिट्टी के खपरैलों से छाया हुआ है।

करते हुए कहते हैं—हरणे-हरणे (वढिया-वढिया) घोडे राठोडो को दे देना। यहाँ तक कि दरजी के पास भी राठोडो की अँगरखियाँ (अँगरिया-पुरुषो के धारण करने का वस्त्र विशेष) को रँगाने का सन्देश भेज दिया गया है—

एक तो परवानो म्हारो दरजीडा ने दीज्यो रे।
राठोडो री अँगरखियाँ रँगाई लिज्यो रे॥
आउ न लडाई लागी ओ मरलो हालरियो॥

अब एक दूसरे गीत म युद्धभूमि मे जाने वाले वीर का चित्रण है। उसे युद्ध में जाने से उत्पन्न होन वाली सभी परिस्थितियो से अवगत कराकर उसके शौर्य की परीक्षा ली जा रही है।

मत जा झगडा मे, झगडा म काकी का जाया जुझे ओ।
पागडिये पग देतॉं छडके छीक वेगी ओ, मत जा झगडा म॥
ए मत जा झगडा म घोडलियो गमाई आवेलो।
नारे मत जा झगडा म काकी का जाया ओ॥[1]

युद्ध म जाते हुए योद्धा से सबोधन करके कहा गया है—तू झगडे मे न जा, झगडे मे काकी के पुत्र जूझ रह हैं अर्थात् बराबर की टक्कर है। साथ ही काकी के पुत्रो मे जोधपुर वालो की ओर भी सकेत है जो कि युद्ध मे अग्रेजो की सेना के साथ आए हुए थे। फिर कहा है कि घोडे के पागडे मे पैर देते समय छीक हो गई है इसलिए तुम्हे झगडे मे नही जाना चाहिए। छीक हो जाने से तात्पर्य अपशकुन से है। किन्तु राजस्थान मे तो वीरो के लिए एक प्रसिद्ध उक्ति है—

सूर न पूछै टीपणो, शकुन न देखै सूर।
मरणॉं नूँ मगल गिणे, समर चढे मुख नूर॥ (बाँकीदास)

इसलिए राजस्थानी वीर पुरुष को अपशकुन की क्या चिन्ता हो सकती है। तू झगडे मे मत जा क्योकि तू यहॉं अपना घोडा खो आएगा। तू झगडे मे मत जा। झगडे मे काकी के पुत्र हैं। यहाँ काकी के पुत्रो के झगडे मे होना स्पष्ट व्यजित करता है कि झगडा कोई बच्चो का खल नही है। उसम फिर कहा गया है कि चौहटे मे खेलते हुए तुम्हारे बच्चे तुम्हे युद्ध मे जाने के लिए मना कर रहे हैं, तू युद्ध मे न जा। महलो मे बैठी हुई जननी, और महलो मे बैठी छोटी रानी भी मना कर रही है तू झगडे मे मत जा। किन्तु वीर का उत्तर सुनिए—

झगडा मे न कीकर जाऊँ जरणी दूध थारो लाजे ए।
माटिडा मरवा ने गडिया जो, जाणो झगडा मे॥

1. देखिए परिशिष्ट गीत-सख्या 29

अर्थात् मैं युद्धभूमि में कैसे न जाऊँ ? हे माता ! तेरा दूध लज्जित होगा। पुरुष मरने के हेतु ही बने हैं, मुझे युद्ध में जाना ही होगा।

इस गीत में वीर की शौर्य-परीक्षा हेतु पहले अपशकुन दिखाया गया है। बाद में उसे बालक, माता तथा पत्नी द्वारा युद्ध में न जाने के लिए बहलाया गया है, जिससे कि यदि उस युद्ध में जाने वाले वीर के हृदय में कहीं दुर्बलता हो तो वह पहले ही प्रकट हो जाए। किन्तु राजस्थानी वीर तो मृत्यु को ही मंगल पर्व गिनते हैं। वह युद्ध में जाने से कैसे रोका जा सकता है।

अंग्रेजों के राजस्थान में आ जमने के पश्चात् लोकगीतों में जो क्रान्तिकारी स्वर फूटा वह सराहनीय एवं अभिनन्दनीय है।

> मोडकी मगरी रो पाणी परे ढाल उतरियो।
> आबूजी रा पाडों में अंग्रेज उतरियो॥
> काली टोपी रा हाँ हाँ काली टोपी रो।
> देश में छावणियाँ नाखे रे काली टोपी रो॥[1]

अर्थात् मोडकी (नाम) मगरी (पहाड़ी) का पानी दूसरी तरफ उतर गया है अर्थात् अंग्रेजों की विजय हो गई है। अब अंग्रेज आबू पर्वत में आकर जमे हैं। यह काली टोपी वाले अंग्रेज देश में छावनियाँ डाल रहे हैं। इसके बाद गीत में प्रश्नोत्तर शैली का प्रयोग है।

> देश में धूत्यारो आयो काई काई लायो रे।
> बना बलदाँ गाडी तो अगरेज लायो रे।
> भूरिया मूँडालो आयो रे कालो उरजण जोतलायो रे।
> देश में अंग्रेज आयो रे काई काई लायो रे॥

अर्थात् देश में यह धूर्त क्या-क्या लेकर आया है ? बिना बैलों की गाड़ी यह अंग्रेज जोतकर लाया है। फिर प्रश्न है देश में अंग्रेज आया है क्या-क्या चीजें लाया है। उत्तर सुनिए—

> फूट नाँकी भायाँ में, बेगार लायो रे। काली टोपी रो।
> देश में धूत्यारो आयो रे, भूरिया मूँडालो॥
> आबू न अजमेर बच में डोडी-डोडी हुडको नाकी रे।
> घोडो रोवे घास न टाबरिया रोवे दाणा ने॥
> महलाँ में ठकराण्या रोवे जामण जाया ने।
> देश में अगरेज आयो रे रोलो वापरियो॥

---

[1] देखिए परिशिष्ट गीत-संख्या 30

अर्थात् अंग्रेजों ने आकर भाइयों में फूट डाल दी है और यह बेकारी लेकर आया है। देश में यह धूर्त, भूरे मुँह वाला आ गया है। इसने आबू से लगाकर अजमेर तक टेढ़ी-मेढ़ी सड़कें डाल दी हैं। घोड़ा घास के लिए रो रहा है और बच्चे दाने के लिए तरस रहे हैं। महलों में बैठी हुई ठाकुरों की रानियाँ अपनी सासु के पुत्र अर्थात् पति को रो रही हैं (क्योंकि वह झगड़े में मारे गए)। देश में अंग्रेज आया है और चारों ओर झगड़ा व्याप्त हो गया है।

उक्त गीत में अंग्रेजों के शासन-काल में जो अव्यवस्था थी उसका स्पष्ट शब्दों में अंकन किया है। किस प्रकार इन्होंने भाई-भाई में द्वेष भावना उत्पन्न कर दी थी, जानवरों को घास का अभाव हो गया और बालक दाने-दाने के लिए रोते थे। इतने स्पष्ट शब्दों में साहित्य में कहीं भी चित्रण नहीं मिलता। कुछ एक कवियों ने तो अंग्रेजों के गुणगान ही किए हैं। यहाँ तक कि हमारे राष्ट्रकवि गुप्तजी ने भी जार्ज पंचम के भारत आगमन पर एक कविता लिखी थी जिसकी प्रथम पंक्ति थी—

चिरायु हो चिरायु हों जार्ज पंचम हमारे ॥

इसी प्रकार बिहारीसिंह नाम के एक कवि ने विक्टोरिया रानी के लिए लिखा—

गदर गनीम गुंवार उठ्यो, सतावन में मिगरे जन जानी।
मेटि प्रजा दुःख बेगि सयानी, त्योंहि बिहारी लियो कर शासन।
जेहि ऐसो विचार असीसें सबै, चिरजीवो सदा विक्टोरिया रानी॥

ऐसे समय में जबकि साहित्यकार अंग्रेजों के गुणगान में निमग्न थे, यह लोक-गायक का ही हृदय था जिसने प्रभुता के प्रभाव को ठुकराकर स्पष्ट शब्दों में अंग्रेजों की भर्त्सना की।

(ख) अश्लील गीत

होली के अवसर पर न केवल राजस्थान में बल्कि सम्पूर्ण भारत में अश्लील गीतों का प्रचलन है, जिन्हें उत्तरी-पूर्वी भारत में कबीर नाम से पुकारा जाता है। राजस्थान में इन गीतों को फाटा या गालियाँ कहा जाता है। ये गालियाँ नगरों में सुने आम दिन को तथा रात्रि को गाई जाती हैं। किन्तु गाँवों में इस प्रकार की प्रथा नहीं है। गाँवों में कभी भी इस तरह के अश्लील गीतों को नहीं गाया जाता। जैसा कि इसी अध्याय में हम ऊपर कह आए हैं, गैर नाचने के बाद में चौहटे में घर पर वीर गीत गाए जाते हैं। यह गैर नृत्य रात्रि को लगभग दस-ग्यारह बजे बन्द हो जाता है। फिर घर पर कुछ देर के लिए वीर गीत गाए जाते हैं तत्पश्चात् वीर गीत गाते हुए वह गायक मण्डली गाँव से बाहर निकलती है तथा

गाँव से इतनी दूर चली जाती है जहाँ से कि उन गीतों की ध्वनि गाँव में न पहुँचे। तब वहाँ जाकर ये लोग इन अश्लील गीतों का गाना प्रारम्भ करते हैं। कभी-कभी यह गायक मण्डली रात-भर यह गीत गाती रहती है तथा भोर होने पर वापिस गाँव में लौटती है।

दिन में गाय-भैंस, भेड़-बकरी आदि पशुओं को चराने के लिए जो लोग जगल में जाते हैं वे दिन में भी अपने साथ चग ले जाते हैं और वहाँ ये दिन-भर अश्लील गीत गाते हैं। मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार मानव के मस्तिष्क में कुछ भावनाएँ ऐसी होती हैं जो दमितावस्था में रहती हैं—मनुष्य उनको किन्हीं कारणों के वशीभूत होकर प्रकट नहीं कर पाता, किन्तु इस प्रकार की भावनाएँ अवसर प्राप्त होते ही प्रकट हो जाती हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य के मन में जो वासनात्मक प्रवृत्ति होती है उसे मनुष्य समाज की मर्यादा के कारण प्रकट नहीं कर पाता है, किन्तु होली के अवसर पर स्वतन्त्रता पाकर ये भावनाएँ अश्लील गीतों के रूप में प्रकट होती हैं।

इन अश्लील गीतों में मनुष्य की वासनात्मक प्रवृत्ति का चरमोत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। साहित्यिक दृष्टि से इन गीतों को हम सयोग शृगार के गीतों की श्रेणी में रख सकते हैं। इन गीतों में नग्नता व्यक्त की गई है। इन्हें सुनकर शिष्ट एव सभ्य मनुष्य के मन में सहज ही घृणा की भावना जागृत हो जाती है। क्योंकि इन गीतों में अश्लील तत्त्व की प्रधानता रहती है इसलिए इनका यहाँ विवेचन करना अनुचित होगा।

घुड़ला के गीत

होली के बाद और गणगौर के लगभग पन्द्रह दिनों पूर्व तक राजस्थानी बालिकाओं द्वारा घुड़ला घुमाया जाता है। ये बालिकाएँ एक छोटी सी कच्ची मटकी (जिसमें छोटे-छोटे छिद्र किए होते हैं तथा उस पर विभिन्न रंगों से चित्र बनाए हुए होते हैं) को रात्रि के समय सिर पर रखकर उसमें दीप जलाकर गीत गाती हुई मोहल्ले अथवा गाँव के प्रत्येक घर पर जाती है। गृहस्वामी अन्न आदि देकर उनका स्वागत करता है। यह बालिकाओं का ही त्योहार है।

यह राजस्थान का अपना प्रादेशिक त्योहार है। इसके प्रचलन के पीछे एक ऐतिहासिक घटना है। इस त्योहार का आरम्भ संवत् 1548 विक्रम से हुआ है। पीपाड़ के निकट एक गाँव है—कोसाणा (जोधपुर)। वहाँ एक बार स्त्रियाँ गौरी पूजा के लिए जा रही थी। वहाँ उनको अजमेर के घुड़ले खाँ नामक सिपहसालार ने घेर लिया। उनमें से वह किसी स्त्री को ले जाना चाहता था। बस इसी बात पर राव सातलजी के और उसके बीच युद्ध हुआ और अन्त में घुड़ले खाँ युद्ध में घायल हुआ और उसका सिर भी छिद गया। सातलजी भी घायल हुए और वहीं वीरगति को प्राप्त हुए। वे स्त्रियाँ घुड़ले खाँ के उस छिदे हुए सिर को, अपनी रक्षा करने वाले वीर के सम्मान में, सिर पर रखकर बाजार में घूमी। उसी दिन से घुड़ले त्योहार प्रारम्भ हुआ। तभी से गणगौर से पूर्व प्रतिवर्ष घुड़ला घुमाया जाता है। मानो यह छिद्रों वाली छोटी मटकी को घुमाकर राजस्थानी बालिकाएँ आज भी राजस्थान के वीर पुरुषों को अपनी रक्षा करने की प्रेरणा देती हैं तथा इस प्रकार उनके सम्मान को ठेस पहुँचाने वाले व्यक्ति की भर्त्सना करती हैं। यह घुड़ले के सम्बन्ध में प्रचलित ऐतिहासिक मान्यता है।[1]

घुड़ले का अर्थ भी मटकी या मटका ही होना है। इस मटकी के बीच जो दीप सँजोया जाता है उसका प्रकाश तारों की भाँति टिमटिमाता हुआ प्रतीत होता है। लोकगीत के एक अंश में घुड़ले का दृश्य देखिए—

---

1 परम्परा—लोकगीत विशेषांक (चैत, संवत 2013), पृ॰ 133

घुडलो ए सुपारियाँ छायो, तारों छाई रात।
भावज ओ, म्हारी पूताँ छाई, बडोडे वीरे घर नार॥[1]

आकाश म तारो ॥ छाई हुई रात अत्यन्त सुन्दर है और धरती पर बालिकाओ के सिर पर रखा हुआ घुडला अत्यन्त सुन्दर है। पुत्रो से घिरी हुई भावज सुन्दर है जो बडे भाई की स्त्री है। यहाँ बडे भाई की स्त्री का पुत्रो स घिरे हुए सुन्दर लगना कितनी सुन्दर उपमा है! जन-जीवन के य उपमाम, विकृत कल्पना के प्रतीक नहीं होकर यथार्थ सामाजिकता के परिचायक हैं।

मगल सूत्र से बँधा हुआ घुडला घूम रहा है। ईश्वर (शकरजी) को पुत्र-प्राप्ति हुई है। हे सुहागिन, घर से बाहर निकलो। हमारे घुडले का स्वागत करो—

तेल बल घी लाव, मोत्याँ रा आखा लाव।
जापा रा लाडू लाव, घुडलो घूमँ छँ जी घूमँ छँ॥[2]

घुडल म जो दीप जल रहा है उसम तेल जल रहा है, इसके बदल म घी लाओ। साथ ही मोतिया के अक्षत तथा प्रसूती म लड्डू लाओ। घुडला घूम रहा है। इन मागलिक वस्तुओ से घुडल का स्वागत करो।

एक अन्य गीत म हास्य तथा व्यग्य की पराकाष्ठा झलकती है। गीत हास्य-मिश्रित व्यग्य का अनुपम उदाहरण है। गीत की प्रारम्भिक पक्तियाँ देखिए—

राता राता रेटूलिया राता रग का फूल जी।
गौरा गौरा भँवरजी न हाथ भो परणाया जी॥[3]

मारवाडी भाषा म चरखे को रटिया कहते हैं। चरख लाल-लाल हैं तथा फूल भी लाल रग के हैं। गोर गोरे जो भँवरजी हैं उनका सात बार विवाह करना चाहिए। वैस भँवरजी शब्द राजस्थानी म साधारणतया पति के लिए ही प्रयुक्त होता है, किन्तु यहाँ इसका अर्थ भाई से है। भँवरजी का सात बार विवाह हुआ, उनम स एक प्रिय स्त्री अपने आभूषणो को झडकाती है, परिणामस्वरूप एक आभूषण गिर पडा। बहिन अपन भाई को सलाह देती है—

सासरिय मत जाइयो वीरा था सासू है धुतियारी जी।
धुतयारी तो धूल खासी लाडी लकर आसी जी॥

तुम ससुराल मत जाना, क्योंकि ह बन्धु! तुम्हारी सास बडी धूर्त है। इस

1 देखिए परिशिष्ट गीत-सख्या 1
2 वही, गीत-सख्या 3
3 वही गीत-सख्या 4

पर भाई कहता है कि यदि वह धूर्त है तो धूल खाएगी। मैं तो अपनी पत्नी लेकर आऊँगा। भाई ने बहिन की सलाह नही मानी। वह पत्नी ले ही आया। अब बहिन ने अपनी भाभी की कितनी भर्त्सना निम्न पक्तियो में की है—

बडा घरां की बेटी आई था माथे छूलो लाई जी।
घावल खोल मेंडासो मारियो मांसु लडवा आई जी॥

बडे घर की बेटी आ रही है। वह अपने सिर पर चूल्हा रखकर लाई है। उसने अपने घाघरे को कस लिया है और लडने के लिए उतारू हो गई है। उसने कचुकी मे थैली डाल रखी है और वह चने चबाती हुई आई है। उसने लापसी पर जादू कर दिया है और घी मे मक्खियाँ मारकर डाल दी हैं।

उक्त गीत मे अनुप्रास की छटा तो देखते ही बनती है। साथ ही ननद-भावज की जगत-प्रसिद्ध ईर्ष्या का भी चित्रण किया गया है। ननद अपनी भाभी पर व्यग्य करती है। भाभी को बडे घर की कहा है। इसमे व्यजना है। भाभी बडे घर की नही है अर्थात् बहुत ही छोटे घर की लडकी है। भाभी को एक फूहड स्त्री के रूप मे हमारे सम्मुख रखा गया है। भाभी के इस स्वरूप पर हँसी आए बिना नही रह सकती। ननद अपने अधिकारो का प्रयोग भाभी पर पूर्ण रूप से करती है। वह भाभी की भर्त्सना ही करती है।

एक घुडले के दूसरे गीत मे भी यही ननद-भाभी का द्वेष भाव देखिए। ऊँचे महल मे दीपक जल रहा है और हवा के झोको से उस महल के किवाड बज उठते हैं। उस महल मे सोने के लिए भाई कन्हैया गया है। उसकी स्त्री पखा झल रही है। पखा झलते हुए स्त्री ने कहा—स्वामी ! मुझे लाल चूडियाँ पहनाओ। पति ने टालते हुए कहा कि लाल चूडियाँ तो मेरी बहिन को अच्छी लगेंगी। मैं तुम्हारे लिए नवसर हार ला दूँगा। इस पर पत्नी रूठ गई और रूठ कर अपने पीहर चली गई। उसको वापिस मनाकर लाने के लिए उसका देवर गया। भाभी ने कहा कि मैं तुम्हारे कहने से नही जाऊँगी—अपने भाई को भेज दो। बस फिर क्या था—

हे झटपट बाँधी पागडी, सूंदारियो लै।
हे दौडयो बागाँ जाय, जाजो मरवो लै॥
हे आली तोडी कामडी, सूंदारियो लै।
मडकायी दोय र चार, जाजो मरवो लै॥[1]

भाई ने झटपट पगडी बाँधी और चल दिए बाग मे। बाग मे से एक गीली

1. देखिए परिशिष्ट गीत-सख्या 6

टहनी तोड़ ली। दो-चार पत्नी को मारी और कहने लगे—फिर रूठोगी ? फिर पीहर जाओगी ? बेचारी पत्नी क्या करती, कहने लगी—

> हे कदेय न रूसूं रूसणों, लूंदारियो लै।
> कदेय न जादू म्हारे पीर, जाजो मरवो लै ॥

अर्थात् अब कभी भी नही रूठूंगी और कभी भी पीहर नही जाऊँगी।

कुछ समय बाद वही चूडियाँ मंडी मे बिकने को आई। मडी से चौहटे मे और चौहटे से गली मे, गली से घर की ड्योढ़ी मे और अन्त म आँगन मे आई। जिसने भी चूडियों को देखा सराहना की। पति की इच्छा हुई इस बार श्रीमतीजी को चूडा पहना दिया जाए। परन्तु वह नही मानी। कहने लगी—मैं अकेली नही पहनूंगी। पहने ननद बाई पहले तो पहनूं। ननद को सूचना दी गई। ननद को पहले ही सारी बात ज्ञात थी, कहने लगी—

> हे सोदरा कहू नहिं आऊँ, लूंदारियो लै।
> मारे आगे मोर नचाव, जाजो मरवो लै ॥

ननद ने सोचा अब भावज आई सीधे रास्ते पर। परन्तु अब उसका भी मौका था, कहला भेजा—भावज मेरे आगे मोरनी बनकर नाचे तो मानूं। भावज ने सोचा, काम बिगड़ा। उसने भी मीठे व्यग्य का सहारा लिया—

> हे मोर ज नाचै अध घडो, लूंदारियो लै।
> नणदोई नाचे सारी रात, जाजो मरवो लै ॥

अर्थात् मोर तो घडी-आध घडी नाचेगा, परन्तु मेरा नणदोई तो बेचारा नटखट ननद के आगे सारी रात नाचता है। अब ननद क्या उत्तर दे ? भाभी ने भी क्या कहा कि ननद बेचारी निरुत्तर हो गई।

इसमे भाभी-ननद की द्वेष भावना, देवर-भाभी का प्रेम, पति-पत्नी के सामाजिक सम्बन्धो का चित्रण है। लुंदारियो लै तथा जाजे मरवो लै गीत की टेक है, जिनका कोई अर्थ नही निकलता। इन गीतो म हमारी सस्कृति के मूल तत्त्व छिपे हुए हैं। हमारे सामाजिक सम्बन्धो के कडवे-मीठे, सुन्दर-कुरूप चित्र इनकी भाव-निधि हैं। ये गीत आज भी हमारे सम्बन्धो का स्वरूप निर्धारित करने मे सहायक हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से बालगीत मडली वह प्राथमिक समूह है जो बालक को सामाजिक सम्बन्धो की शिक्षा देता है।

आज भले ही घुडले के त्योहार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि काल-कवलित हो चुकी हो, किन्तु इस त्योहार पर गाए जाने वाले गीतो का जो महत्त्व है वह शताब्दियो तक भी कालकवलित नही हो सकेगा। आज चाहे कोई म्लेच्छ हमारी

बहू-बेटियो को भगा ले जाने वाला न रहा हो और भले ही राव सातलजी जैसे वीर उनकी मान-रक्षा के लिए न मर मिट सकें, किन्तु यह त्योहार और इस त्योहार के गीत हमे आज भी अपनी बहू-बेटियो के सम्मान का मूल्य याद दिलाता है ।

हमे, मानो ये बालिकाएँ गीत गाकर यह स्मरण कराती हैं कि हम तुम्हारी बहिने हैं। हमारी मर्यादा एव मान की रक्षा का भार तुम्हारे बलिष्ट स्कन्धो पर है। इन गीतो मे जो अनुरोध, जो अनुनय है, वह हमें आज भी बहिन के सच्चे स्वरूप के निकट ले जाकर छोडती है।

ये बालिका गीत है। इनमे गाभीर्य का भले ही अभाव हो, किन्तु ये अन्तर के वे भाव हैं जो बिना किसी बन्धन को स्वीकार किए अपने स्वाभाविक रूप मे हमारे सम्मुख हैं। इनमे अपनी ही विभिन्न विशेषताएँ हैं।

इनमे जो अलकार आए हैं वे प्रसगवश हैं तथा उन्हे समझने के लिए मस्तिष्क पर बल डालने की बिल्कुल आवश्यकता नहो। मोत्या रा आखा लाव मे आखा (अक्षत) का उपमान मोती है। कितनी सहज उपमा है! इसी प्रकार घुडले मे जो दीपक जल रहा है और उस घुडले के छेदो मे से जो दीपक का प्रकाश झलमलाता है वह ऐसा है मानो तारो मे छाई हुई रात्रि हो। अनुप्रास की छटा तो प्रत्येक गीत का प्राण ही है, यथा—

हाथो पाली लाडली था झाँझरिया झडकावे जी। आदि।

शीतला के गीत

(1) पूजन-विधि

शीतला माता का पूजन न केवल राजस्थान में किया जाता है वरन् सम्पूर्ण भारत में किया जाता है। चैत्र कृष्णा सप्तमी को शीतला की पूजा की जाती है। चैत्र कृष्णा सप्तमी, शील-सप्तमी के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह त्योहार होलिका-दहन के सातवें दिन मनाया जाता है। शील-सप्तमी के दिन लोग बास्योडा (ठंडा) भोजन ही करते हैं। शील-सप्तमी के एक दिन पूर्व ही विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ बना लिए जाते हैं जिनको कि शील-सप्तमी के दिन शीतला माता की पूजा करने के पश्चात् खाया जाता है। इसके सम्बन्ध में राजस्थान में एक कहावत भी बहुत प्रसिद्ध है—

आडै दिन मे बास्योडो ही चोखो।

तात्पर्य यह है कि सामान्य दिन की अपेक्षा शीतला-पूजन का दिन ही श्रेष्ठ है जिससे अच्छा भोजन तो खाने को प्राप्त होता ही है। शीतला-पूजन के लिए एक विशेष प्रकार का दलिया या घाट (राजस्थानी) बनाई जाती है जिसे राजस्थानी भाषा में ओल्या कहा जाता है। यह मक्की का दलिया होता है जिसमे नमक-मिर्च भी पकाते समय डाले जाते हैं और इसमें छाछ या मठा मिला दिया जाता है। इसकी विशेषता यह होती है कि यह कई दिनों तक रहता है और खाया जा सकता है। इसमें दुर्गन्ध उत्पन्न नहीं होती है।

शील-सप्तमी के दिन भोर में ही स्त्रियाँ तथा बालक-बालिकाएँ नवीन वस्त्राभूषणों से सजकर शीतला-पूजन को घर से निकल जाती हैं। स्त्रियो के पास एक थाल में खाद्य-सामग्री रहती है तथा एक जल का भरा हुआ कलश। ये स्त्रियाँ जब शीतला के स्थान पर गीत गाती हुई पहुँचती हैं तो पहले जल से शीतला माता को स्नान कराया जाता है तत्पश्चात् खाद्य पदार्थों को शीतला को चढ़ाया जाता है।

शीतला की सवारी गधा माना गया है। इसलिए ही शायद शीतला माता का पुजारी राजस्थान में कुम्हार हुआ करता है। शीतला माता की पूजा करते

समय उसस महिलाएँ बच्चो की रक्षा की भीख माँगती हैं, अन्त मे वे शीतला माता को प्रणाम कर गीत गाती हुई घर लौटती हैं।

डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने शीतला माता के गीतो का विवेचन करते समय लिखा है—मालिन देवी की प्रिय सेविका है ''।[1] इससे ज्ञात होता है कि बिहार मे शीतला माता की पूजा माली जाति द्वारा की जाती है, किन्तु राजस्थान मे शीतला माता की पूजा कुम्हार द्वारा की जाती है।

राजस्थान मे विवाह होने के पश्चात् वर-वधू भावी जीवन को सुखद बनाने के लिए सभी प्रमुख देवी-देवताओ का आशीर्वाद ग्रहण कर लेना आवश्यक समझते हैं। विवाह के उपरान्त जब वधू अपनी ससुराल मे आती है तो अन्य देवी-देवताओ के अतिरिक्त शीतला माता की पूजा करने के लिए समस्त गाँव की बहू-बेटियाँ वर-वधू को लेकर शीतला के स्थान पर जाती हैं। वर-वधू शीतला माता को प्रणाम करते हैं तथा कुछ भेंटस्वरूप खाद्य-पदार्थ आदि चढाते हैं। पूजन समाप्त होने के पश्चात् नीम की दो शाखाएँ मँगाई जाती हैं। वर-वधू एक-दूसरे को टहनी से मारते हैं। इसके पश्चात वधू के सभी देवरों को बुलाया जाता है। वे भी एक-एक करके भाभी के साथ उसी टहनी से एक-दूसरे को मारने की क्रिया करते हैं। इसे सांट सांटकी का खेल कहा जाता है। इस प्रकार शीतला माता का पूजन किया जाता है।

(2) मान्यताएँ

भारतीय जनता मे शताब्दियो से यह विश्वास चला आ रहा है कि जितनी भी भयकर बीमारियाँ तथा महामारियाँ हैं, वे दैवी शक्ति के प्रकोप से मनुष्य पर आक्रमण करती हैं। ई० ओ० मार्टिन ने लिखा है कि—भारत की यह एक बहुत ही सामान्य ग्रामीण धारणा है कि रोग और अस्वस्थता आदि प्राकृतिक कारणो के परिणाम न होकर मातृ-देवियो, जादू-टोनो और नजर आदि के फलस्वरूप होते हैं। इसका बडा सीधा-सा कारण है। अन्य, जैसे कि विशूचिका जो इतना आकस्मिक और उग्र रूप से फैलता है और चेचक जो कि इतना भयानक और विकृतिकारक है किसी देवी या देवता के ही निमित्त माना जाता है।[2] इस प्रकार भारतीय जनता की यह मान्यता है कि चेचक शीतला माता के प्रकोप से फैलती है। इसीलिए चेचक के रोगी का उपचार कराने की अपेक्षा लोग शीतला माता को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं जिससे कि रोगी स्वस्थ हो जाए। चेचक से मरने वाले बच्चे को जलाया नही जाता, क्योकि जलाने पर शीतला माता और भी कुपित हो

1 भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन, पृ० 200
2 द गॉडस आफ इण्डिया—ई० ओ० मार्टिन, पृ० 253

सकती है। चेचक से मरने वाले को गाढ दिया जाता है।

लोग गाँव में चेचक के फैलने पर कहते है कि महामारी का जोर है आदि अर्थात् बहुत ही आदरसूचक सबोधन किया जाता है। इससे बचने के लिए लोग बच्चो को चिथडे पहना देते हैं और उनको बडे भद्दे और गदे नामो से पुकारा जाता है। रोगी जहाँ रहता है वहाँ नीम वृक्ष की शाखाएँ टाँग दी जाती है। उस घर का कोई भी व्यक्ति ऊँची आवाज मे नही बोलता है, क्योकि इसम माता नाराज हो जाती है। इस प्रकार जिस परिवार मे चेचक होती है उसम विभिन्न निषेधो का पालन किया जाता है जैसे—साग-दाल मे हल्दी न डालना, सब्जी-दाल को नही छोंकना, कपडे आदि की सिलाई, धुलाई नही करना, स्नान नही करना आदि। जब माता के रोगी की अवस्था अधिक बिगडती है तो कहा जाता है कि छोत पड गई। इस छोत स बचाने के लिए जो व्यक्ति रोगी के पास आता है उसको अपन कपडे रोगी के कमरे के बाहर घडे मे जलते हुए खाद आदि मे झाडकर अन्दर प्रवेश करन दिया जाता है।

शीतला की सवारी गधा होता है इसलिए गधो को इसके प्रकोप के समय अनाज खिलाया जाता है। रोगी को गधी का दूध भी पिलाया जाता है जिससे कि रोगी को आराम मिले तथा रोग आगे न बढे।[1]

रोगी को बचाने के लिए विभिन्न टोने-टोटके राजस्थान म किए जाते हैं। एक मिट्टी के ढक्कन मे खाद्य-पदार्थ रखकर रोगी पर ऊँवार (घुमा) कर चौराहे पर रख देते हैं। इस क्रिया को सैनिक लगाना कहते हैं। इस क्रिया के करने वाले व्यक्ति को सम्पूर्ण समय मौन रहना पडता है। यदि वह मौन भग कर दे तो यह क्रिया अपूर्ण रह जाती है और कहते है कि असफल हो जाती है। इस प्रकार की रूढिगत मान्यताएँ व अधविश्वास राजस्थान मे ही नही सम्पूर्ण भारत मे प्रचलित हैं।

(3) नाम-विषयक विचारधारा

प्रश्न उठता है कि जिस रोग मे रोगी को बहुत तेज ज्वर आवे और वह ताप से गर्म हो उठे, ऐसे रोग की देवी को शीतला के नाम से क्यो अभिहित किया जाता है? इस प्रश्न का उत्तर भाषा-विज्ञान बहुत अच्छे ढग से दे सकता है। हिन्दुओ मे एक धार्मिक मान्यता है कि गाय को बहुत ही पवित्र माना जाता है, इसलिए गाय की खाल को गाय की गोवाडी कहकर पुकारते हैं। केवल धार्मिक कारणो से ही ऐसा नही होना, किन्तु कई स्थानो पर अन्य वस्तुओ के साथ भी यही

---

1 द इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इण्डिया—मई 25, 1958—शीतला गोडेस आफ स्माल-पौक्स—ए० सी० राय चौधरी

बात लागू होती है। जैसे नमक को कई स्थानों पर मीठा कहकर पुकारा जाता है। कुछ गांव इतने बदनाम हो जाते हैं कि जिनका वास्तविक नाम नहीं लिया जाता और उन्हे किसी दूसरे नाम से ही पुकारा जाता है। उदाहरणस्वरूप अजमेर जिले का एक गांव है खरवा। इस नाम को लोग कभी भी इस नाम से नहीं पुकारते हैं, बल्कि इसे तालाब वाला गांव कहकर पुकारा जाता है, क्योंकि ऐसी मान्यता है कि यदि ऐसे गाँव का नाम ले लिया जावे तो उस दिन भोजन भी प्राप्त न हो। एक अन्य उदाहरण भी देखिये—शेखावाटी में बड़ा गाँव है, जिसका नाम न लेकर भूगला गाँव (बुरा गांव) ही कहकर पुकारते हैं।[1] ऐसी ही धारणा शायद चेचक रोग के सम्बन्ध में भी हो। बुरा नाम न लेकर इसका अच्छा नामकरण कर दिया गया हो। फिर शीतला तो भयकर रोग है, इसका सीधा नाम लेने के पीछे शायद अनिष्ट का भय छिपा हुआ हो।

(4) शीतला माता के गीत

जब शीतला का प्रकोप होता है या किसी को चेचक की बीमारी होती है तो बालक की माँ शीतला माता से अनुनय करती है कि माँ, मेरे बच्चों की रक्षा करना और माँ की वन्दना मे निम्न गीत गाया जाता है—

> बाड विचाले पीपलीजी जाँकी सीली छाँय,
> बला ल्यूँ मेडल माता ए।
> जे तलै बालो खलता जी, खेलत चढ गई ताप, बला०।
> खिल-खिल बालो घर गयो जी, बिलख्यो सारी रात। बला०।
> दादी-भूवा थर-थर कॉप्या डरप्या, माई अर बाप, बला०।[2]

बाड के बीच मे पीपल का पेड था जिसकी ठंडी छाया थी। उसके नीचे बच्चा खेल रहा था। खेलते-खेलते बुखार चढ गया। खेलने के पश्चात् बच्चा घर गया। वह रात-भर पीड़ा के कारण बिलबिलाता रहा। उसे शीतला निकल आई। यह देखकर दादी-फूफी आदि सम्बन्धी थर थर काँपने लगे और माता-पिता भयभीत हो गए। तब सब शीतला माता की शरण म गए। तब शीतला माता ने कहा—

> थे क्यूँ डरपो, जोगण्यां जे, करूँगी छतर की छाँय, बला०।
> जद मेरी माता टूठण लागी, गाजर को सो बीज, बला०॥

---

1 मरु भारतीय—राजस्थान में शीतला—श्री रिछपालसिंह शेखावत, पृ० 44

2 राजस्थान के लोकगीत—सं० ठाकुर रामसिंह आदि पृ० 18

जद मेरी माता भरवा लागी, मक्क का सो बीज, बला० ।
जद मेरी माता मान लियो ए, सोयो सारी रात, बला० ।।

अरी, जोगनियो तुम क्यो डरती हो ? मैं छत्रछाया करूँगी । जब माता प्रसन्न हुई तो गाजर के बीज के बराबर दाने उठ आए । फिर माता भरने लगी (दानों में पानी भरने को माता का भरना कहते हैं) तो दाने पानी भर कर मक्के के बीज के बराबर हो गए । फिर माता ने मान लिया (दाने मुरझाने लगे) तो बच्चा रात-भर सोता रहा । तब बच्चे की माता कूँडा (मिट्टी का बर्तन) भरकर माता को पूजेगी—

भरिये कूँडारे चौकसी जो नानडिये री माय,
बला ल्यूँ सेडल माता ए ।।

उक्त गीत में सेडल माता का प्रयोग भी शीतला माता के लिए ही हुआ है । ये शब्द एक-दूसरे के पर्याय हैं । बला ल्यूँ सेडल माता ए । गीत की टेक है जिसकी आवृत्ति प्रत्येक पंक्ति के बाद हुई है जिससे गीत को गति मिली है ।

एक अन्य गीत में शीतला माता के वाहन गधे का वर्णन है । लोक देवी शीतला अडसठ गधों पर बैठकर निकली है ।[1]

एडल सेडल नीकली ए माँ, अडसठ गधा पिलाण मेरी माय ।
धोके न ए म्हारे (नाम) की माए तने ए नहुँआवाँ म्हारी सेडल माय ।
माता को मड साँकडो ए माँ, जातीडा को बडो परिवार मेरी माय ।
फेर चिणावो मड मोकलो ए माँ, मैं (नाम) का कुणनद मेरी माय ।।

सेडल माता अडसठ गधों की सवारी करके निकली है । पुजारिन कहती है कि मैं माँ को प्रणाम करती हूँ । मैं अपने नाम से माँ को प्रणाम करूँगी माँ को स्नान कराऊँगी । माताजी का मंदिर संकीर्ण है तथा पूजने आने वालों का बड़ा परिवार है । पुजारिन स्वयं ही इस समस्या को हल करती हुई कहती है, मंदिर फिर बना दिया जाएगा, किन्तु प्रश्न है इस (नाम) का कौन नन्द है जो इस कार्य को सम्पन्न करे ।

प्रस्तुत गीत में शीतला या सेडल माता के प्रति पुजारिन का श्रद्धा भाव स्पष्ट झलकता है । यद्यपि बिहार में भी यही मान्यता है कि शीतला माता का वाहन गधा है, किन्तु लोकगीतों में उनके वाहन के रूप में घोड़ा प्रयुक्त हुआ है । डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा है कि—संभवतः पूजनीय एवं पवित्र माता को ऐसा अपवित्र पशु वाहन रूप में देना भक्त को रुचिकर नहीं प्रतीत हुआ, अतः

1 मरु भारती (अप्रैल 1959) राजस्थान में शीतला—रिछपालसिंह, पृ० 42

उसने घोडे का वर्णन किया है, यथा—

> कवना बरने तोरा घोडवा ए सीतलि, कवना बरने असवार ?
> बगालिनि देवी हो, लीहीना पुजवा हमार।
> लाल बरने मोरा घोडवा ए सेवका, सुरुज बरने असवार।
> मइया रग रसिया रे हाथ ले ले बसिया, तीतील ले से ओढि आई ।।[1]

एक अन्य राजस्थानी गीत म माता के पहनने के लिए विभिन्न वस्त्राभूपणो के लाने और मां को पहनाने का उल्लेख प्राप्त होता है, यथा—

> माता रे मन्दिर चढती सालूडो रलकयोए माँय ।
> तेडो बजाजी रो बेटा सालूडो ले आवे ए माँय ।।
> पेरे मोरे आय भवानी ऊँठाला री राणी ।
> बालूडा रखवारी ए माय ।
> बालूडा रखवारी भवानी खेडा रखवारी ए माय ।।[2]

माता के मन्दिर पर चढत साडी खिसक गई । रे माता ! बजाज के पुत्र को भेजो जो साडी ले आवे । मेरी आदि भवानी, ऊँटाला की रानी, बालको की रक्षक माता पहिनेगी । बालको की रक्षक और खेडो (ग्रामो) की रक्षक माता ।

उक्त गीत की दूसरी पक्ति मे थोडा परिवर्तन होता है बाकी दूसरी पक्तियो मे लय इसी रूप से चलती रहती है तथा बजाज के पुत्र के स्थान पर सोनी का पुत्र आता है जो माता के लिए साडी के स्थान पर रखडी (सिर का आभूपण) और तमण्यो या टेवटा (गले का स्वर्ण नीरा जडित आभूषण) तथा झाझड (बिच्छुवे पैरा मे पहनने के) लिए आता है। यही नही, खैरादी (लकडी का काम करने वाला) का लडका भी आता है जो माता के पहनने के लिए चुडा लाता है। इस प्रकार गीत मे पुनरावृत्ति होती है और गीत चलता रहता है। जिस प्रकार इस गीत मे शीतला माता को बालको की रखवाली कहा गया है उसी प्रकार भोजपुरी गीतो मे भी समान भाव की अभिव्यक्ति हुई है—

> पटुका पसारि भीखि मांगिली बालकवा के भाई ।
> हमरा के बालकवा भीखि दी ।
> मोरी दुलारी हो मइया, मोरी मानावा राखिनि मइया ।
> हमरा के बालकवा भीखि दी ।।[3]

---

1 भोजपुरी ग्राम गीत—डा० उपाध्याय (भाग 1) शीतला माता के गीत ।
2 देखिए परिशिष्ट, गीत-सख्या 2
3 भोजपुरी ग्राम गीत (भाग-1), डा० उपाध्याय, पृ० 267

गणगौर के गीत

गणगौर राजस्थान का एक प्रमुख त्योहार है। उपयुक्त तथा मनोवांछित पति की प्राप्ति के लिए यह त्योहार विशेषत: कन्याओ द्वारा मनाया जाता है। विवाहिता स्त्रियाँ अपने सुहाग की रक्षा के लिए तथा ऐश्वर्य एवं वैभव प्राप्ति के लिए यह त्योहार मनाती हैं। विधवा स्त्रियो को गणगौर पूजन का अधिकार नही है। होली जलाने के दूसरे दिन से ही गौरी-पूजन आरम्भ हो जाता है। यह पूजन चैत्र शुक्ला चतुर्थी तक चलता है। चैत्र शुक्ला तृतीया और चतुर्थी को मेले भरते हैं। इन्ही मेलो के साथ-साथ गौरी-पूजन समाप्त होता है। पूजा की समाप्ति के दिन गौरी उत्सव की योजना की जाती है जिसके अनुसार गौरी तथा ईश्वर (महादेव) की युगल मूर्ति सामन्ती वैभव तथा ऐश्वर्य के साथ निकाली जाती है। यह एक प्रकार का यात्रोत्सव है। यह यात्रा किसी जलाशय अथवा नगर के प्रमुख स्थान तक की जाती है। इस प्रकार की यात्रा का गणगौर की सवारी के नाम से (राजस्थान मे) अभिहित किया जाता है। यह कही-कही पन्द्रह दिन के लिए और कही अन्तिम दो या तीन दिन के लिए निकाली जाती है। प्राय: राजा-महाराजा तथा सरदार लोग भी इन सवारियो मे सम्मिलित होते हैं। इस अवसर पर घोडे तथा ऊँटो की दौड होती है। इस सम्बन्ध मे एक कहावत भी प्रचलित है—

गणगौरियो ही घोडा न दौडेला तो दौडेला कद।

गणगौर के बाद चार महीनो तक राजस्थान मे कोई त्योहार नही आता। इसके लिए भी राजस्थान मे एक कहावत प्रसिद्ध है—

तीज त्युहारां बावडी, ले डूबी गणगौर।

अर्थात् श्रावण तृतीया त्योहारो की बावडी है (अर्थात् तीज के पश्चात् त्योहार जल्दी-जल्दी आते हैं) गणगौर उस बावडी मे सब त्योहारो को ले डूबती है। इसका तात्पर्य है कि गणगौर से त्योहारो की समाप्ति हो जाती है। गणगौर के गीतो को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—

(1) कन्याओं के गौरी-पूजन के गीत।

(2) विवाहित स्त्रियो के गौरी-पूजन के गीत।

(1) कन्याओ के गीत

गणगौर पूजते समय कन्याएँ गौरी से सुयोग्य वर देने की कामना करती हैं। निम्न गीत मे कन्या वर माँग रही है—

मेडी बैठो मद पीवै ए, लीलो केरो असवार।
खाँगी बाँधे पागडी ए, मघरी चाले चाल।
कड मोड घोडे चडे ए, चाल निरखतो आय।
ओ वर देई माता गोरल ए, म्हे थाने पूजण आय ॥[1]

अर्थात् मेडी (दूसरी मजिल पर बना खपरैल से छाया कमरा) मे बैठा शराब पीने वाला, नीली घोडी पर सवारी करने वाला, टेढी पगडी बाँधने वाला, मद-मद चाल मे चलने वाला, और कमर मोडकर घोडे पर चढने वाला जो कि चाल का भी निरीक्षण करता आवे—हे गौरी माता, तू मुझे ऐसा वर देना। मैं तुझे पूजने के लिए आई हूँ।

यह तो हुई ऐसे वर की बात जिसकी उन्हें कामना है। किन्तु इसी गीत मे यह भी कह दिया है कि ऐसा मत देना जो—

चूल्हे केरो चाँदणो ए, हाँडी रो हमीर।
नो थालां पीवै राबडी ए, सोला रोटी खाय।
वो वर टाली माता गोरल ए, म्हे थाँने पूजण आय।

अर्थात् जो केवल चूल्हे का चाँदणा (प्रकाश) हो, हाँडी का हम्मीर हो, जो नौ थाल राबडी[2] पी जावे और सोलह रोटी खाने वाला हो। ऐसे वर से हे गौरी माता! तू रक्षा करना। मैं तुझे पूजने आई हूँ।

जिस वर की कामना कन्या ने गीत की आरम्भिक पक्तियो मे की है वह एक राजस्थानी वीर का रूप है। बाद मे जिस वर से बचाने की पार्वती से प्रार्थना की गई है वह वर केवल चूल्हे का प्रकाश अथवा भोजन भट्ट, कायर तथा पेटू है। ऐसे अकर्मण्य तथा निष्क्रिय पति से कन्याएँ बचना चाहती हैं। हाँडी के हम्मीर मे भी व्यजना है। हम्मीर नाम का राजा अपने हठ के लिए प्रसिद्ध हुआ है। तो हाँडी का हम्मीर होना से भी पेटू का ही तात्पर्य है।

एक अन्य गीत मे कन्याओ ने गौरी माता से अपने परिवार के सभी व्यक्तियों

---

1 देखिये परिशिष्ट गीत सख्या 6

2. एक पतला खाद्य पदार्थ जो मठे में आटा घोलकर बनाया जाता है।

का एक सुन्दर एवं योग्य स्वरूप माँगा है। गीत की प्रारम्भिक पंक्तियों में कन्याएँ गौरी माता के द्वार पर जाकर किवाड़ खोलने की प्रार्थना करती हैं कि किवाड़ खोलो बाहर तुम्हें पूजन वाली खड़ी हैं। तब गौरी माता उत्तर देती हैं—हे पूजने वाली कन्याओ, पूजा कर लो और यह बताओ कि तुम क्या-क्या चाहती हो? इस प्रश्न का उत्तर देखिए—

> कान्ह कँवर सो वीरो माँगा, राइ सी भोजाई।
> जलहर जामी बावल माँगा राता देई मायड़॥
> बड़ो दुमालिय काको माँगा, चुड़ला वाली काकी।
> होड़ा धोवण फूफो माँगा, झाड़ू देवण भूवा।
> कजल्यो बहनोई माँगा, सदा सुहागण बहना॥[1]

अर्थात् हम कृष्ण के समान भाई चाहती हैं और राधा जैसी भोजाई चाहती हैं। योद्धा पिता माँगती हैं और ममतामयी माता। बड़ा वीर काका माँगती हैं और चुड़ले वाली काकी। बर्तन साफ करने वाला फूफा माँगती हैं और झाड़ू देने वाली भुआ। कजल्यो (सुन्दर) बहनोई माँगती हैं और सदा सुहागिन बहिनें।

इस गीत में एक परम्परा का निर्देशन है। कन्याएँ सीधे गौरी माता को यह कैसे कहें कि हम सुन्दर पति चाहिए। यह तो मर्यादा के विरुद्ध बात है। इसलिए उन्होंने इस बात को बड़ा घुमा फिराकर कहा है। पहले उन्होंने कृष्ण-सा वीर एवं राधा-सी भावज माँगी, बाद में जलधर के समान स्नेहार्द्र और वीर पिता एवं ममतामयी रातादेवी माता माँगी, फिर वीर काका तथा चुड़ले वाली (सुहागिन) काकी माँगी, बर्तन साफ करने वाला फूफा माँगा जिससे कि उनकी भुआ का कार्य भार हल्का हो और भुआ ऐसी माँगी जिसे केवल झाड़ू लगाना हो। तब कहीं जाकर अपनी माँग रखी और वह भी प्रच्छन्न रूप में।

गौरी-पूजन हेतु शीतला-अष्टमी के बाद एक मिट्टी के छोटे-से बर्तन (कूँडे) में गेहूँ या जौ बो दिए जाते हैं। उनके बढ़े हुए अंकुरों को यवांकुर (जँवारे) कहते हैं। इन जँवारों से गौरी-पूजा की जाती है। गौरी को कन्या जीवन का आदर्श माना जाता है। गौरी ने उपयुक्त पति की प्राप्ति के लिए कठोर तप किया था। कन्याएँ उपयुक्त पति को प्राप्त करने के लिए गौरी-पूजन करती हैं। प्रातःकाल कन्याएँ टोली बनाकर तालाब या कुएँ आदि किसी जलाशय पर सिर पर कलश रखकर जाती हैं। वहाँ एक किनारे गौरी का कुंकुम आदि से पूजन करती हैं। लौटते समय स्वच्छ जल भरकर तथा उसमें दूब, पुष्प, जल आदि पूजन की सामग्री लेकर घर लौटती हैं। घर पर गौरी की मूर्ति या काष्ठ-निर्मित प्रतिमा की पूजा करती हैं। चैत्र शुक्ला तृतीया एवं चतुर्थी को घर में ढोकले बनाती हैं। पहले जल

1. देखिए परिशिष्ट गीत-संख्या 7

और जँवारों से पूजन करके ढोकलो के चूरमे का भोग लगाती हैं। प्रतिवर्ष इसी प्रकार पूजा करती हैं। विवाह के बाद भी गौरी-पूजन चलता रहता है।

एक गीत में गौरी-पूजा के लिए कन्याएँ अपने हाथों में जँवारे लिए हुए है और कोरा कूंडा जल से भरा है। वह सात सहेलियों के साथ माँ गौरी की पूजा कर रही है। माँ गौरी पूछती है—हे पूजने वाली बाइयो, तुम क्या-क्या धन माँगती हो? वे अन्न-धन आदि के साथ लक्ष्मी माँगती हैं। गौरी माता ये देने के लिए राजी है और फिर माँगने को कहती हैं तब पुजारिनें माँगती है—

> म्हे तो सासू जसोदा अेक किसन वर माँग रही।
> थाने सासू जसोदा अेक किसन वर देस्याँ ॥[1]

वे जसोदा जैसी सासु और कृष्ण जैसा वर माँगती हैं और गौरी देने की स्वीकृति प्रदान करती हैं।

गणगौर के गीतों में एक गीत में गौरी का नखशिख वर्णन तथा शृंगार वर्णन मिलता है। गौरी के तीक्ष्ण नैनों का दृश्य बड़ा मनोहर है। गौरी गढ़ पर से उतरी है। उसके हाथ में कमल का पुष्प है। गौरी का सिर नारियल जैसा है और उसकी वेणी वासुकी नाग जैसी। इससे आगे भौंहों तथा ललाट का वर्णन देखिए—

> भँवारे हो भँवरो गवरल है फिरें।
> हो जी बैं री लिलवट आगल चार ॥[2]

उसकी भौंह ऐसी हैं मानो भौंरे उड़ रहे हों। उसका ललाट चार अंगुल का है। उसकी आँखें चमकते हुए सुन्दर रत्नों सी जड़ी जान पड़ती हैं। उसकी नाक तोते की चोंच जैसी है। आगे मसूड़ों तथा दाँतों का वर्णन देखिए—

> मिमरायाँ चूनी जड़ी।
> होजी, बैरा दाँत दाड़म केरा बीज।

उसके मसूड़े ऐसे हैं मानो लाल जड़े हुए हों। उसके दाँत दाड़िम के दानों जैसे हैं। उसका हृदय साँचे में ढला हुआ सा सुघड़ और छाती वज्र के समान कठोर है उसके पार्श्व बिजली के समान चमकते हैं और उसका पेट पीपल के पत्ते के समान। उसकी अँगुलियाँ मूँगफली जैसी हैं और बाँह चने की डाल जैसी। उसकी पिंडलियाँ रूपमयी हैं। उसकी जाँघें देवमंदिर के स्तम्भों के समान हैं। उसकी एड़ी में दर्पण जैसी चमक है। उसके पैर का पंजा मठवा-सोट जैसा है। गौरी घेरदार घाघरा

1 देखिए परिशिष्ट गीत-संख्या 7
2 [illegible]

और दक्षिणी चीर ओढे हुए हैं। सरोवर की पाल चढते-उतरते समय गौरी के रमझोल घुंघरू बजते हैं। गौरी ऊँचे सिंहासन पर बैठती है, मैं उसके चरण दूध से पखारूँगी। गौरी हिमाचल की कन्या है। वह पतले (सुन्दर) ईश्वर जी की पत्नी है। हे गौरी, किस शिल्पी ने तुमको गढा है? तुमको बनाने वाला चतुर लोहार कौन है? गौरी उत्तर देती है—मेरी माता ने मुझको जन्म दिया है और विधाता ने मुझे रूप दिया है। हे गौरी, महाराजा तुमको देहज देंगे और सौ घुडसवारों के साथ तुम्हे पहुँचायेंगे। हे गौरी, मैं हाथ जोडकर तुमसे विनती करती हूँ और झुक-झुककर तुम्हारे पाँव पडती हूँ।

इस गीत मे गौरी के अग-प्रत्यग के लिए लोकगायक द्वारा जो उपमान जुटाए गए हैं उनकी मौलिकता देखने योग्य है।

ये सामान्य जन-जीवन से लिए गए हैं। उनमे अलङ्कृत काव्यो के रूढ उपमान चयन की परम्परा नही दिखाई देती तथा उनम काव्य जैसी जटिलता का अभाव है। जहाँ जायसी ने ललाट की उपमा दूज के चन्द्रमा से दी है वहाँ हमारे लोक-गायक ने केवल इतना कहना पर्याप्त समझा कि गौरी का ललाट चार अगुल है। विज्ञजन इस तथ्य स परिचित हैं कि पुरुष के ललाट का अधिक चौडा होना और नारी का ललाट छोटा होना सुन्दरता के प्रतीक हैं।

(2) विवाहित स्त्रियो के गीत

स्त्रियो को गौरी पूजा का बडा चाव होता है। निम्न गीत म एक स्त्री अपने पति से अनुरोध कर रही है कि वे उसे गणगौर पूजने जाने की आज्ञा दें—

खेलण द्यो गणगौर भँवर म्हाने पूजण द्यो गणगौर।
ओ म्हारी नणद रा वीर, म्हाने रमणे द्यो गणगौर।।[1]

अर्थात् हे भँवरजी! मुझे गणगौर खेलने दो, मुझे गणगौर पूजने दो। हे मेरी ननद के भैया! मुझे गणगौर खेलने दो। यही नही, वह उनसे प्रार्थना करती है कि वे उसके सिर में लगाने के लिए मेमद लावे तथा उसकी रखडी या बोर[2] मे रत्न जडा दीजिए उसे गणगौर खेलने जाने दीजिए। इससे आगे—

हो म्हारी सइयाँ जोवे बाट, सजन म्हाने खेलण द्यो गणगौर।
म्हारी चाँचली रै कोर दिराओ, भँवर म्हाने पूजण द्यो गणगौर।
सजन म्हाने रमण द्यो दिन दो चार।
भँवर म्हाने पूजण द्यो गणगौर।।

1 देखिए परिशिष्ट गीत-संख्या 1

2 स्त्रियों का सिर पर बाँधा जाने वाला सौभाग्य चिह्न

हे साजन ! मेरी सहेलियाँ मेरी प्रतीक्षा कर रही है। मुझे गणगौर खेलने दीजिए। मेरे कचुकी के कोर दिलवाइये, हे भँवर ! मुझे गणगौर पूजने दीजिए। हे साजन ! मुझे दो-चार दिन खेलने दीजिए। हे भँवर ! मुझे गणगौर पूजने दीजिए।

उक्त गीत मे एक स्त्री की गणगौर खेलने तथा पूजने की भावना व्यक्त हुई है। दो-चार दिन मुहावरे का प्रयोग हुआ है। गौरी पूजन के समय स्त्रियो का आपस मे विनोद भी चलता रहता है इसीलिए खेलने की बात कही गई है।

इस दूसरे गीत मे एक पति बाहर जाने को उद्यत है। उसने कमर कस बाँध लिया है। उसकी पत्नी उससे अनुरोध करती है कि उनको कमरबंध खोल देना चाहिए और यही रहना चाहिए। उसके रूप की बडाई भी करती है और कहती है कि आपके लैहरिया[1] पगडी का जो छोगा है (पगडी का एक छोर) वह शोभित हो रहा है। वह उससे स्वामी-स्वामी कहकर अनुरोध कर रही है—इसी बीच कह देती है—

सायवा सोक्ड बाई रा सेण सा।
बँधी कमर कस खोल दो जी सायवा ॥[2]

अर्थात् स्वामी तो सौत बाई के प्रिय हैं। और फिर अनुरोध करती है कि वह कमर-कस खोल दें अर्थात् विदेश-गमन स्थगित कर दें। आगे कहती है कि मैंने तो आपको होली के अवसर पर अतिथि बुलाया था, किन्तु आप गणगौर की तीज पर आए। मैंने तो अपने राजन को गुलाब का पुष्प समझ रखा था, किन्तु ये तो कनेर के फूल निकले। फिर वही अनुरोध।

एक अन्य गीत मे भी एक स्त्री अपने पति से घर रहने का अनुरोध इस प्रकार कर रही है—

म्हारा रजा मारू योंई रेवोजी।
म्हारी लाल नणद रा वीर॥
म्हाने कुण खेलावे गणगौर।
म्हारा रजा मारू योंई रेवो जी ॥[3]

अर्थात् हे मेरे प्रियतम ! आप यही रहिये। हे मेरी लाल ननद के भाई, मुझे गणगौर कौन खेलायेगा ? इसलिए आप यही रहिए। इसके आगे की पंक्तियो

1. विभिन्न रगो से रँगी हुई पगडी
2 देखिए परिशिष्ट गीत-सख्या 3
3 वही, गीत-सख्या 4

मे कहा है कि हे मेरे सुन्दर प्रियतम, यही रहिए। आपको रास्ते मे गणगौर मिलेगी। हे मेरे प्रिय ! यहीं रहो।

गणगौर स्त्रियो का प्रिय त्योहार है अत नायिका इस पर्व पर पति को घर रहने का आग्रह कर रही है। एक अन्य गीत म भी नायिका अपने पति से कहती है—

म्हारा राजा आज तो गुलाबी गणगौर है ॥[1]

एक अन्य गीत मे पत्नी अपने पति से गणगौर पूजने जाने देने की आज्ञा माँगती है, क्योंकि उसके भैया ने गणगौर बनाई है। वह कहती है कि उसे केवल दो घडी भर के लिए जाने दें—

म्हारे बीरे जी माँडी गणगौर हो रसिया।
घडी दोय खेलवाँ-ने जावा दो।
घडी दोय जावताँ ने,
घडी दोय आवताँ ने।
घडी दोय सहेल्याँ मे
लागे है हो रसिया।
घडी दोय खेलवा ने जावा दो।[2]

अर्थात् मेरे भैया न गणगौर बनवाई है। हे रसिया, दो घडी के लिए खेलने को जाने दीजिए। दो घडी जाने मे, दो घडी आने म दो घडी सहेलियो म—छ घडी भुल लगेगी। दो घडी खेलने जाने दीजिए।

इस पर पति उत्तर देता है—

घडी दोय खेलती पलक दोय खेलती।
साथणियाँ मे सारी दन खोवे ए मिरगानेणी।
थाने जिना म्हारो हिवडो भरियो डोले।
थाँकी नय झलके,
माथो थारे चलके।
चूडो थारो चिलके,
थाँका नैणाँ रो नजारो, प्यारो लागे है जी गोरी।
थारे विना हिवडो भरियो डोले ॥

अर्थात् दो घडी खेलती दो पलक खेलती, तू अपनी सहेलियो मे सम्पूर्ण दिन

---

1 देखिए परिशिष्ट गीत-सख्या 5
2 वही, गीत सख्या 15

व्यतीत कर देगी। हे मृगनयनी! तेरे बिना मेरा हृदय भर आता है और व्यथित हो जाता है। तुम्हारी नथ, तुम्हारा सिर और तुम्हारा चूड़ा चलकता या चमचमाता रहता है। तुम्हारे नेत्रों का जो नजारा (दृष्टिक्षेप) होता है वह मुझे बहुत प्रिय लगता है।

लोकगीतों में और काव्य में भी ऐसे बहुत कम स्थल हैं जहाँ पुरुष भी स्त्री के प्रेम में व्यथित होता है। हमें प्राय एकपक्षीय प्रेम ही दृष्टिगत होता है। जहाँ नारी पति-वियोग म रोई है, तारे गिन-गिनकर रातें व्यतीत की हैं और आहें भर-भरकर वह जीवित रही है, वहां पुरुष मौन है।

हाँ, कुछ अपवाद अवश्य प्राप्त होते हैं, किन्तु जितना नारी का क्रन्दन हमे लोकगीतों में ही क्या काव्य में सुनाई दिया है, उसके कुछ ही अंशों मे पुरुष का रुदन यदि प्राप्त हो भी जाए तो क्या? किन्तु नारी के प्रेम-भाव की वह समता नहीं कर पाएगा।

उक्त गीत में पति ने अपनी पत्नी के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया है। अन्यत्र हमे एकपक्षीय प्रेम की ही अभिव्यक्ति मिलती है।

वैसे गणगौर के गीतों में देवी-देवताओं का वर्णन है, परन्तु वास्तव मे ये मानवीय तत्त्वों से परिपूर्ण हैं। इन गीतों में देवी देवताओं के माध्यम से नारी-हृदय की चिरन्तन व्यवस्था सँजोई गई है। एक स्त्री अपने पति के लिए खेत पर रोटियाँ लेकर जा रही है। उसे रोटी ले जाने म कुछ देर हो जाती है, इसलिए उसका पति उस पर बिगड़ पड़ता है और उस पर हाथ छोड़ देता है। भारतीय नारी अपने पति को ही सर्वस्व समझती है। पति को सर्वस्व समझने के उपरान्त भी जब पति उसे पीट देता है तो उस अबला नारी की व्यथा का बाँध टूट पड़ता है—

> न हो राजा, तीसरी म जोड़या हाथ।
> जो थे मणियेर सोटी मार सो हो राजा॥
> नहीं म्हारे माय न बाप।
> नहीं म्हारे माय न मावसी, हो राजा।
> कुण म्हाँरो आणो लेई जाई॥[1]

और वह कहने लगती है—हे स्वामी! जो तुम मुझे सोटियों से अधिक मारोगे, तो देखो राजा, न तो यहाँ मेरी माँ है और न पिताजी। मेरी माँ नहीं है, मौसी भी नहीं है। फिर मुझे मैके कौन ले जाएगा?

इन पंक्तियों म कितनी व्यथा भरी हुई है! भारतीय नारी सदा पुरुष से

---

1 देखिए परिशिष्ट गीत-संख्या 14

प्रताड़ित होती रही है। पुरुष के अत्याचारों को उसने मौन रहकर सहन किए हैं किन्तु उसका मौन लोकगीतों के माध्यम से मुखरित हुआ है। इनके माध्यम से उसने आहें भरी हैं। उसने अपने हृदय के उद्‌गार प्रकट कर दिए हैं। वह जो कुछ समाज की मर्यादाओं की परिधि में बँधकर न कह सकी वह उसने लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त कर दिया है। उक्त पंक्तियों में हमें भारतीय नारी की हीन दशा का भी परिचय मिलता है।

तीज के गीत

राजस्थान का तीज त्योहार सम्पूर्ण भारत मे प्रसिद्ध है। पावस की रिमझिम मे ताप-तप्त पृथ्वी शस्य-श्यामल हो जाती है। स्त्री-पुरुषो के हृदय मे उल्लास तरंगित होने लगता है। वर्षा-ऋतु के इन्ही महीनो मे (श्रावण-भाद्रपद) तीज के त्योहार मनाए जाते है। इन त्योहारो पर स्त्रियाँ झूला झूलती हैं, गाती हैं तथा नृत्य करती हैं। ससुराल की अपेक्षा यह त्योहार पीहर मे सहेलियो के साथ अधिक स्वच्छन्दता मे मनाया जाता है। राजस्थानी स्त्रियो का यह सर्वप्रिय त्योहार है।

विवाह के पश्चात् प्रथम श्रावण मास फाल्गुन मास की भाँति ही पीहर मे मनाने की परम्परा है। ऐसा कहा जाता है कि पहले श्रावण मास मे सास और बहू को कभी साथ नही रहना चाहिए। इसलिए यह प्रथा है कि विवाह के पश्चात् जब भी लड़की का प्रथम श्रावण होता है, तो उसके पीहर से उसका भाई या पिता उसे लेने के लिए पहुँच जाता है। ससुराल वाले भी उसे अनिष्ट के भय से पीहर भेज देते हैं।

पीहर में एकत्र सभी नव-विवाहिताएँ तीज के अवसर पर किसी पेड़ पर झूला डाल लेती हैं और उस पर झूलती हैं। झूलते समय स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार के ऋतु तथा शृंगार आदि से सम्बन्धित गीत गाती हैं। इसके साथ ही नव-विवाहिता सहेलियाँ आपस मे मनोविनोद भी करती हैं। जब एक झूले पर झूल रही होती है तो दूसरी सहेलियाँ अपने हाथो मे पेड़ की गीली टहनियाँ लेकर खड़ी हो जाती हैं और उसके झूले के पेंग मारने के पश्चात् उस झूलने वाली से उसके पति का नाम पूछती हैं। भला राजस्थान की लज्जाशील स्त्री अपने पति का नाम कैसे बताये? उससे आग्रह करने पर जब वह अपने पति का नाम नही बताती है तो उस पर उन टहनियों से मार पड़ती है और अन्त मे उसे विवश होकर अपने पति का नाम बताना ही पड़ता है। प्राय जल्दी नाम नही बताने के कारण उस पर इतनी मार पड़ती है कि उसकी पीठ चोटें लगने से हरी हो जाती है।

विषय के अनुसार हम तीज त्योहार के गीतो को निम्न भागो में विभाजित कर सकते हैं—

(1) ऋतु सम्बन्धी गीत,
(2) भाई-बहिन के पावन प्रेम के गीत,
(3) झूले के गीत,
(4) ससुराल के कटु अनुभूतिपूर्ण गीत,
(5) विरहिणियों के गीत।

अब इसी विभाजन के आधार पर तीज त्योहार के गीतों का विवेचन किया जाएगा।

(1) ऋतु सम्बन्धी गीत

राजस्थान मरुभूमि है। मरुभूमि के लिए पावस ऋतु का जो महत्त्व है उसे केवल राजस्थान-निवासी या किसी मरुस्थल के निवासी ही समझ सकते हैं। यह स्वाभाविक ही है कि जहाँ जल का अभाव हो वहाँ के निवासी पावस ऋतु में उसकी पूर्ति देखकर प्रसन्न हो जाएँ—उल्लास से फूले न समाएँ। इसलिए जब पावस ऋतु आती है, राजस्थान-निवासियों के जीवन की शुष्कता दूर हो जाती है और वे हर्षोन्मत्त हो जाते हैं। उनका हर्ष एवं उल्लास उद्दाम वेग से गीतों के रूप में स्वच्छंद निर्झरिणी के वेग के समान फूट पड़ता है।

इन गीतों में हम कृषक जीवन के सरल एवं स्वाभाविक चित्र देखने को मिलते हैं। इनमें प्रकृति से निकट एवं घनिष्ठ सम्बन्ध दृष्टिगत होता है, यथा—

आयो आयो सावण भादवो ! कोई काली घटा घिर आय।
आज म्हारी बादली बरसेली ।।
म्हारो बीरो जी बीजैं बाजरो, म्हारा भाभीजी काटे फोग। आज…
म्हारा काकाजी चरावै टोडिया, म्हारा माऊजी लावैं छकियार। आज…
म्हारा बलदाँ ने चारो मोठको, म्हारा हालीड़ा ने गुड़ली खीर। आज…[1]

श्रावण-भाद्रपद का महीना आ गया है। काली-काली घटाएँ घिर आई हैं। आज मेरी बदली बरसेगी। मेरा भाई बाजरा बो रहा है। मेरी भाभी फोग[2] काट रही है। मेरा पिता ऊँट चरा रहा है और माँ छाक[3] ला रही है। मेरी बदली आज बरसेगी। मेरे बैलों के खाने के लिए मोठ का चारा है। मेरे हल चलाने वाले हाली के लिए गाढ़ी खीर। आज मेरी बदली बरसेगी।

वर्षा आनेवाली है—यह जानकर कितने सरल स्वाभाविक ढंग से हर्ष की अभिव्यक्ति की गई है ? प्रकृति के साथ हृदय की वास्तविक एकात्मकता द्रष्टव्य है। यहाँ मनुष्य के साथ ही नहीं वरन् पशुओं से भी तादात्म्य है। कितना आदर्श

1 राजस्थानी लोकगीत—स० ठाकुर रामसिंह आदि, पृ० 487
2 एक पौधा विशेष
3 दिन का भोजन (लघ)

एव निष्पाप जीवन है। हमे कृषक जीवन की जो झाँकियाँ इन गीतो मे उपलब्ध हैं वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। कवि-कल्पना मे बादल कितने ही सुन्दर क्यो न हों, किन्तु लोकगीतो के बादलो का स्वाभाविक सौन्दर्य उनमे कहाँ ? कालिदास के मेघ यदि विरह-व्यथित हृदय मे वियोगाग्नि प्रज्वलित कर सकते हैं तो लोकगीतो के ये मेघ ग्रामीण जीवन मे एक नव-चेतना तथा प्राण फूंक सकने मे समर्थ हैं। लोकगीतो के मेघो का सौन्दर्य किसी महाकवि के मेघो से कम नही।

लोकगीतो म मेघो का जितना स्वाभाविक चित्रण हुआ है उतना ही काव्य में जटिल चित्रण मिलता है।

निम्न लोकगीत मे मेघो से नित्य मरु प्रदेश मे बरसने का आग्रह देखिए जिससे कि धरा पर जाने क्या-क्या उत्पन्न हो और जग का सताप नष्ट हो जावे—

नित बरसो मेहा बागड मे। नित बरसौ० ॥
मोठ बाजरो बागड निपजै, गेहूँडा निपजै खादर मे।
नित बरसौ० ॥
मूँगर चँवला बागड निपजै, जवडा निपजै खादर मे।
नित बरसौ० ॥
टोड टोडिया बागड निपजै, बैल्या निपजै खादर मे।
नित बरसौ० ॥
भेड बाकरी बागड निपजै, भैंस्या निपजै खादर मे।
नित बरसौ ॥[1]

हे मेघ, मरुस्थल मे नित्य बरसो। मोठ बाजरा मरुस्थल (बागड) मे उत्पन्न होता है और गेहूँ उपजाऊ भूमि (खादर) म। ऊँट और ऊँट के बच्चे बागड मे होते हैं और खादर मे बैल। भेड-बकरी बागड मे और भैसें खादर मे होती हैं। हे मेघ, मरुभूमि मे नित्य बरसो।

कृपक मेघ से मरुभूमि मे विभिन्न वस्तुओ के उत्पादन हेतु नित्य बरसने के लिए अनुनय कर रहा है जिससे कि ससार की समस्याएँ हल हो। कृपक के लिए मेघ एव भूमि का बडा महत्त्व है। उसकी जीविका, उसका हर्ष, व्यथा सभी इन्ही पर निर्भर है।

एक अन्य बदली गीत मे सुन्दर भावाभिव्यक्ति देखने को मिलती है। गीत मे प्रश्नोत्तर शैली का प्रयोग हुआ है। गीत की आरम्भिक पक्तियो मे बदली को सबोधन करके कहा गया है कि—हे बदली, तूने मेरे चन्द्रमा को छिपा लिया।

1. राजस्थान के लोकगीत—स० ठाकुर रामसिंह आदि, पृ० 486

बदली उठ-उठकर उसके घर आई और उसने महलों को भी घेर लिया। हे बदली, तूने मेरा चाँद छिपा लिया। इसके पश्चात् बदली से प्रश्न किया गया है—

> किण दिसा से आई ए बदली, कुण म्हारो घर ए बतायो।
> बदली ए म्हारो चाँद छिपायो।[1]

अर्थात् हे बदली! तू किस दिशा से आई है? तुझे मेरा घर किसने बता दिया? हे बदली! तूने मेरा चाँद छिपा लिया है। अब उत्तर देखिए—

> दक्खिण दिसा से आई है बदली, इ तो ढूंढ़त-ढूंढ़त घर पायो। बदली ए ''

अर्थात् यह बदली दक्षिण दिशा से आई है। इसने ढूंढ़ते-ढूंढ़ते तेरा घर पा लिया है। फिर वही गीत में टेर की पुनरावृत्ति हुई है। इसके पश्चात् फिर प्रश्न है *कि हे बदली, तूने क्यों मेरा चाँद छिपाया और क्यों मेरे घर पर घेरा डाला है?* इसका उत्तर भी सुनिए—

> रतनागर उ नीर भरियो, थारे घरें बरसवाने घेरो लगायो। बदली ए'''
> घहर घुमेर उमड़ी बदली, थारो चाँद ओट में आयो। बदली ए'''

अर्थात् रत्नागर से जल भरा और तेरे घर बरसने के लिए आकर घेरा डाला। जब बदली गम्भीर रूप से उमड़ी-घुमड़ी तो तेरा चाँद ओट में आ गया।

प्रस्तुत गीत में भावगाम्भीर्य और रहस्यवाद की झलक है। वियोग-रूपी मेघ ने प्रेमी चन्द्र को छिपा लिया है। व्याकुलता के मेघ ने मानो मन-रूपी घर को घेर लिया है। यदि इसे रहस्यवादी गीत कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी, किन्तु वास्तव में यह और कुछ नहीं हृदय का उल्लास है—केवल बादल और चन्द्रमा की आँख-मिचौनी है।

वर्षा ऋतु जैसे ही प्रारम्भ होती है, कृषक जीवन में नव उमंग दृष्टिगोचर होती है। राजस्थानी कृषक, जो जल के अभाव में हाथ पर हाथ धरे बैठा होता है, वह वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होते ही कृषि के कार्य में जुट जाता है—

> मोटी-मोटी छाँटां ओसरयो ए बदली।
> ओसरयो ए बदली कोई जोड़ा ढेलम-ढेल॥
> सुरंगी रुत आई म्हारे देस, भली रुत आई म्हारे देस॥[2]

अर्थात् उमड़-घुमड़कर मोटी-मोटी बूँदों से मेघ ने बरसना आरम्भ कर दिया है। ताल-तलैये ढेल मेलकर उतरा रहे हैं। हमारे देश में भली और मनोहर ऋतु

---

1. राजस्थान के लोकगीत—स० ठाकुर रामसिंह आदि, पृ० 42।
2 वही, पृ० 61

आई है। इसके पश्चात् प्रश्नोत्तर शैली मे गीत का विकास देखिए—

ओ कुण बीजै ए बादली? ओ कुण बीजै मोठ मेवा मिसरी? टेक।
इसर बीजै बाजरो ए बदली, बाजरो ए बदली।
कानू बीजै मोठ मेवा मिसरी। टेक।

बदली से ही प्रश्न किया गया है कि यह कौन है जो मोठ (जो कि मेवा मिसरी के समान है) बो रहा है? इसके उत्तर मे कहा गया है कि ईश्वर बाजरा बो रहा है और कृष्ण मोठ बो रहे हैं।

इस गीत की आरम्भिक पंक्ति की तुलना हम निम्न कनऊजी सावन के गीत से कर सकते हैं—

रिमझिम परै फुहार औ बुँदियाँ टपकि रही।
झिलमिलि बहै बयारि पवन झलि डोलि रही।।[1]

वर्षा ऋतु राजस्थान मे प्रायः श्रावण-भाद्रपद महीनो मे अधिक होती है और उन्ही महीनों में तीज त्योहार आता है। इसलिए इस त्योहार के अवसर पर ये ऋतु सम्बन्धी गीत राजस्थानी ललनाओ के कलकठ से मुखरित होते हैं। इसीलिए तीज त्योहार के अन्तर्गत भी इनका विवेचन अनिवार्य समझा गया।

(2) भाई-बहिनों के पावन प्रेम के गीत

सावन के गीतो मे भाई-बहिन के पावन प्रेम की सुन्दर झलक दिखाई पडती है। न केवल राजस्थान के त्योहार गीतों में वरन् भारत के अन्य भागो के लोक-गीतो मे भी भाई-बहिन के प्रेम को प्रमुख स्थान मिला है। कजली मे (उत्तरी भारत मे सावन मास मे गाई जाती है) भाई-बहिन के पवित्र प्रेम से परिपूर्ण गीत मिलते हैं। सावन मास मे ही रक्षाबन्धन का त्योहार आता है। रक्षाबन्धन के दिन बहिन अपने भाइयो को राखी बाँधती है। यह राजस्थान की प्राचीन परम्परा है। बहिन भाई को सूत का कच्चा धागा बाँधकर उसे अपनी रक्षा के लिए वचनबद्ध करती है। ग्राम्य जीवन के सादे-सरल वातावरण के पृष्ठ पर भाई-बहिन के प्रेम भाव के चित्र अति सुन्दर बने हैं।

बहिनें अपनी ससुराल मे भाई की प्रतीक्षा करती हैं कि वह आएगा और उसे लिवा ले जाएगा। निम्न गीत मे यही भावना अभिव्यक्त की गई है—

सावण तो लाग्यो भादवो रे—वरसियो चारू खूंट।
म्हारा मोरिया सावण लहरायो रे।।

1. कनउजी के लोकगीत—लेखक सतयाम अनिल, पृ० 104

सावण में बाई गौरी सासरे।
वन्हैयो बीरो लेवण हार। म्हारा मोरिया० ॥
सावणियो मुरगलो रे लाल।
आवेलो बीरो बाई र पावणो ॥
लावेलो बाई ने रथ जुताय। म्हारा मोरिया० ॥[1]

अर्थात्—श्रावण-भाद्रपद का महीना आरम्भ हो गया है—चारों दिशाओं में वर्षा हो रही है। श्रावण मास में बहिन गौरी ससुराल में ही है। उसे उसका भाई कन्हैया लाने वाला है। हे मेरे मोर सावन लहरा रहा है—श्रावण सुरंगा है। इस अवसर पर भाई अपनी बहिन के घर अतिथि बनकर जाएगा। वह रथ जुतवाकर बहिन को पीहर ले जाएगा। हे मेरे मोर, सावन लहराया है।

बहिन को अपने भाई का पूर्ण विश्वास है कि वह उसे लेने के लिए अवश्य आएगा। यह भाव-धारा भारत के अन्य प्रान्तों के लोकगीतों में भी व्यक्त हुई है, यथा—

ऊँचे से बरोठवा ससुर जू के तेहि चढ़ि हेरों मैं बाट।
मेरे परदेसिन के बीरना रे ॥[2]

भाई की प्रतीक्षा बहिन अपने ससुराल में बहुत आतुरता से करती है। वह अपने भाई के आगमन हेतु शकुन मना रही है—

हरिये हरिया रे डालै काली कोयल बोले राज।
बोले बोलाये मैंया सबद सुणावे राज॥
उड़ रे म्हारा काला कागा, जे म्हारो बीरो जी आवे राज ॥[3]

अर्थात्—हरे-भरे वृक्ष की डाल पर काली कोयल बोल रही है। इधर एक काला कौआ आ बैठा है। अरे काले कौए, अगर मेरा भाई आये, तो उड़ जा। मुझे विश्वास है, मेरा भाई आधी रात तक अथवा एक पहर के तड़के घोड़े पर सवार होकर आ जाएगा।

इससे आगे वह अपने भैया को संबोधित करके कहती है—भैया कान्हीराम! तू निश्चिन्त होकर गहरी नींद में क्यों सोया है? तेरी प्यारी माँ की पुत्री बहिन ससुराल में व्याकुल हो रही है। वह बिसूर बिसूरकर मर जाएगी और तेरी प्रतीक्षा में कौए उड़ाती रहेगी। भैया ने शायद अपनी बहिन की इस करुण पुकार को सुन लिया—

---

1. राजस्थान के लोकगीत—सं० ठाकुर रामसिंह आदि, पृ० 67
2. कनउजी लोकगीत—लेखक संतराम अनिल, पृ० 267
3. राजस्थान के लोकगीत—सं० ठाकुर रामसिंह आदि, पृ० 72

आय ढँकारयो बाई गवराँ के चौवारे राज।
सूती छी लाल पिलग पर झीणा सालू आढ्याँ राज।।
उठी छी वीर मिलण नैं, टूट्यो बाई रो हार राज।
हार तो फेर पोवास्यां, बीरा-सूँ कद मिलस्याँ राज।।
चुग देसी म्हारी सोन-चिडकली पो देगो बिणजारो राज।।

भाई आया। बाई गौरी के द्वार पर घोड़ा रोका। उस समय बहिन सो रही थी और बारीक चुनरी ओढ रखी थी। एकाएक वह भाई से मिलने के लिए उठ दौड़ी। जल्दी मे उसका हार टूट गया। परन्तु वह कहती है कि हार के बिखरे मोतियो को सोन चिड़िया चुन देगी और बिसाती उसे पिरो देगा। किन्तु भैया से मिलने के ऐसे सुअवसर बहुत कम आते हैं।

इन अन्तिम पक्तियो मे भाई से मिलने की बहिन के हृदय की सच्ची आतुरता व्यक्त हुई है। एक कनउजी लोकगीत मे भी यही बहिन की मिलन आतुरता निम्न प्रकार से व्यक्त हुई है—

हाथन मेहदी पायन बिछिया कैसे मिलै राजा बीर जी।
धोय डारो मेहदी काढ़ि डारो बिछिया झपटि मिलो राजा बीर जी।[1]

एक अन्य गीत मे बहिन अपनी ससुराल मे है—उसका भाई लेने के लिए जाता है। बहिन के जब भाई अतिथि बनकर जाए तो फिर बहिन के आतिथ्य सत्कार का क्या कहना ! भाई कोई बहिन के रोज-रोज अतिथि बनकर जाता है ? फिर भाई के आने पर बहिन क्यो नही चार-चार चूल्हे बनावे ? चार-चार चूल्हे बनाकर उन पर क्यो नही वह लापसी, तलों की कसार, खीचड़ो और चदलिए का साग बनावे ? यही नही, वह अपने भाई एव पति को एक ही थाली मे खाते हुए देखना चाहती है—

साला बेनोई भेला जीम लो,
करो नी मनडा री बात।
आयो - आयो जेठ असाढ,
मेहा झड माँडियो।।[2]

जिससे कि उनको मन की बात करने का अवसर मिले। जब खाने बैठ गए तो बहिन के प्रिय भाई ने अपने बहनोई से पूछ लिया—

मेलो बेनोई जी, म्हारी बाई ने।
आयोडी सावणिये री तीज।।

---

1. कनउजी लोकगीत—लेखक सतराम अनिल, पृ० 271
2 राजस्थानी लोकगीत—स० ठाकुर रामसिंह आदि, पृ० 79

किन्तु बहनोई जी अपनी पत्नी को पीहर भेजने को तैयार नहीं। कहते हैं कि हे साला जी ! यदि मैं इसे भेज दूं तो मेरा सारा काम रुक जावे। कौन मेरे लिए भोजन लाए, कौन मेरे आटा पीसे और कौन दही मथे ? साला ने उनकी इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया—

बैनड तो पीसै थाँरी पीसणो।
माँ थाँरी दही रे बिलोय॥

किन्तु बहनोई जी को तो भेजना ही नहीं था। देखिए टालने के लिए कैसा उत्तर देते हैं—

बैनड तो म्हारी साला जी चिड़कली।
आज उडै परभात।
माउ तो म्हारी साला जी डोकरी।
आज मरे परभात॥

इतना बहनोई का कहना था कि सालाजी क्रोधित हो गए। उसने अपने घोड़े पर जीन कस ली अर्थात् वह रवाना हो गया। भाई को बहिन से प्रेम अवश्य है किन्तु वह अपने स्वाभिमान पर चोट कैसे सहन करे। किन्तु बहिन तो दो पाटों के बीच पिसने वाले दाने के समान है। वह किससे रुष्ट हो ? वह अपने पति से भी रुष्ट नहीं हो सकती और न वह अपने भाई को इस प्रकार जाते हुए देख सकती है। भारतीय नारी तो एक आदर्श नारी है जो न अपने पति को और न अपने भाई को रुष्ट कर सकती है। उसने जीवन की विषमताओं में संतुलन रखा है। उसने स्वयं सभी कष्टों को सहन किया है—वह सर्वदा विषमता एवं समता को तथा कटुता एवं मधुरता को जोड़ने वाली एक कड़ी रही है। फिर राजस्थानी बाला क्यों न उस आदर्श पर खरी उतरे ! वह अपने भैया से अनुरोध कर रही है। किन्तु हाँ, वह उसे रोकेगी नहीं, क्योंकि उसके भाई के मान का प्रश्न है। किन्तु वह अपने भैया के सम्मुख अपना दुखड़ा तो रोएगी। यदि बहिन अपने भाई को ही अपने दुःखमय जीवन की कथा न कहेगी तो कहेगी किसे—

घड़ी एक थाम, वीरा घोड़लो, करलाँ नी मनड़े री बात।
पगाँ तो बलती वीरा मूँ फरूँ, बाँधियाँ तो आकड़ले रा पान।
माथे तो मौड़ी वीरा मूँ फरूँ, बाँधियाँ पिपलिए रा पान।

अर्थात्—हे भैया ! एक घड़ी भर तेरे घोड़े को रोक ताकि मैं तुझसे अपने मन की बात कर लूं। मेरे पैर जलते हैं इसलिए मैं पैरों में (जूतों के अभाव में) आक के पत्ते बाँधे फिरती हूँ। मेरे सिर पर भी कुछ आवरण नहीं है इसलिए

मैंने (ओढ़नी के अभाव में) पीपल के पत्ते सिर पर बाँध रखे हैं।

इसमे कोई सन्देह नही कि उक्त पंक्तियो मे अतिशयोक्ति का प्रयोग हुआ है; किन्तु क्योंकि यहाँ बहिन की दीन दशा पर पूर्ण प्रकाश डालना था इसलिए अतिशयोक्ति का सम्बल लेना अनिवार्य था।

बहिन ने अपनी दीन दशा तो भाई से कह सुनाई, किन्तु एक शर्त उस पर लगा दी। हे भाई ! तू ये बातें माताजी के सुनते मत कहना। वह इन पावस की रातो मे रोएगी ! भाभी के सुनते भी ये बातें मत कहना, क्योंकि वह अपने पीहर मे जाकर इन बातो की चर्चा करेगी। किन्तु हाँ, तू पिताजी के सुनते ये सब बातें भले ही कह देना जिससे कि वे तुरन्त ऊँट तैयार करवा कर मुझे लेने के लिए आ जायेंगे। बहिन को विश्वास है कि भाई के साथ यदि मुझे नही भेजा गया तो मेरे पिताजी के आने पर मुझे अवश्य भेज दिया जायेगा। इसलिए वह अपने भाई से कहती है कि तू केवल पिताजी के सुनते मेरी दीन दशा का वर्णन करना जिससे कि वे मुझे लेने के लिए आ जायें।

उसे अपनी माँ से कितना प्रेम है ! वह अपनी माँ को उसके दुःखो को सुनकर रोते हुए भी देखना नही चाहती है; क्योंकि मातृ-हृदय को वह अपने दुःखो से दूर रखना चाहती है, क्योंकि माता का ममत्व कभी अपनी सन्तान के दुःखो को नही सुन सकता। इसके साथ ही उसे अपनी प्रतिष्ठा का भी ध्यान है। वह अपने भाई को सावधान कर देती है कि वह अपनी पत्नी के सुनते यह सब नही कहे। क्योंकि वह अपने पीहर मे जाकर ये बातें कहेगी जिससे उसकी प्रतिष्ठा हल्की होगी। नारी ससार की समस्त-विषमताओ के प्रहार अपने कोमल हृदय पर सहन कर लेती है, किन्तु वह अपनी मर्यादा पर कभी आँच नही आने देती है। वह सब कुछ सहन कर सकती है, किन्तु अपनी प्रतिष्ठा का लोप नही सह सकती। भारतीय नारी का आदर्श है कि वह प्राण दे देगी, किन्तु अपनी मर्यादा नही देगी। फिर राजस्थान की वीर बालाओ का तो अपना आदर्श है। वे अपने मान की रक्षा के लिए जीवित अग्नि मे जल चुकी हैं। राजस्थान का इतिहास जौहर की ज्वालाओ मे प्राण विसर्जित करने वाली घटनाओं का इतिहास है। यहाँ भी बहिन अपनी दीन दशा अपने भाई को अवश्य सुनाती है। किन्तु वह अपनी प्रतिष्ठा को, मर्यादा की सीमाओ को कैसे विस्मृत कर दे !

(3) झूले के गीत

राजस्थान मे श्रावण-भाद्रपद मे स्त्रियाँ पेडो की डाल पर झूला डालकर झूलती हैं। श्रावणी तीज का त्योहार राजस्थानी रमणियो का प्रिय त्योहार है। अपने चिर प्रतीक्षित त्योहार के अवसर पर राजस्थानी युवतियाँ नीम की ऊँची-ऊँची डालो पर झूला मचकाती, पैंगें मारती सावन की काली घटाओ से बरसने वाली

हल्की बूँदों की फुहार में अपने कल-कंठ की सुरीली तान मिला देते हैं जिससे ग्रामीण वातावरण मधुरता से भर जाता है।

पुत्री अपनी माँ से आग्रह कर रही है कि उसके लिए भी हींदा (झूला) डलवा दे—

> ए माँ, चपा बाग में हींदो घला दे, तीज नवेली आई।
> ए माँ, और सहेल्यां रे घर रो हींदो, म्हारा हींदो नाई ॥[1]

हे माँ! मेरे लिए भी चम्पा बाग में झूला डलवा दे क्योंकि नवेली तीज आई है। हे माँ! अन्य सहेलियों के तो घर पर झूला है किन्तु मेरे नहीं। कहीं ऐसा न हो कि माँ यह उत्तर दे दे कि किसी सहेली के झूले पर ही झूल लो—इसलिए वह पहले ही स्पष्ट कर देती है—

> ए माँ हींदो हींदण मूं गई, कोई न हींदो हिंदाई।
> सँग सहेल्यां मासूं मूडो मोडियाँ, बिना हिंदीयाँ ई आई ॥

हे माँ! मैं तो झूला झूलने के लिए गई, किन्तु मुझे किसी ने भी झूला नहीं झुलाया। सभी सहेलियों ने मेरे से मूँ मोड लिया और मैं बिना झूले ही आई हूँ। इसलिए हे माँ! मेरे लिए भी चम्पा बाग में झूला डलवा दे क्योंकि नवेली तीज आ पहुँची है।

गीत में युवतियों के हृदय में झूला झूलने की उत्सुकता का वर्णन किया गया है।

माँ से युवती कह रही है कि चम्पा बाग में झूला डलवा दो। चम्पा बाग का चाहे भौतिक जगत में अभाव हो किन्तु लोकगीतों के भावना-संसार में चम्पा के बागों का कोई अभाव नहीं।

एक दूसरे झूला गीत में अविवाहित युवती झूला झूलने गई, परन्तु झूला शुरू होने के बाद की स्थिति इस प्रकार है—

> पहले ही झकोले माँ भारी उमडियो,
> कोई दूजे हे झकोले आ मंडियो।
> तीजे ई झकोले ए म्हारी माय।
> कोई ओतो पडवा लाग्यो मूसलधार।[2]

अर्थात्—ए मेरी माँ, झूले के पहले झकोले में मेह उमड आया, दूसरे में ऊपर छा गया और तीसरे में मूसलाधार बरसने लगा। इसके पश्चात् देखिए उसकी क्या दशा हो गई—

---

1. राजस्थान के लोकगीत—ठाकुर रामसिंह आदि, पृ० 85
2 वही, पृ० 83

कपड़ा वी भीज्या, ए माँ, छूटी धूजणी जी,
और मो सहेली, ए माँ म्हारी, भाजगी जी।
कोई मासैं भाग्यो य न जाय,
पायल वी रुपगी, ए माँ, म्हारी बीच मे जी॥

मेरे कपड़े भीग गए और हे माँ ! मुझे कँपकँपी होने लगी। मेरी अन्य सहेलियाँ तो भाग गईं, किन्तु मेरे से भागा भी नही गया—मेरी पायल कीचड में फँस गई। ऐसे अवसर पर एक घुड़सवार आ पहुँचा—

भलो वी करै, ए माँ, घुडला रा असवार रो।
म्हारे दीनी सिर पर ढाल।
ल्याय वी पुगायी, ए माँ, चितरग महल मे जी॥

अर्थात्—इस घुड़सवार का भला हो। वर्षा से बचाने के लिए उसने मेरे सिर पर अपनी ढाल रख दी और मुझे घर पहुँचा दिया।

एक अन्य गीत मे बहिन के लिए भाई ने झूला डलवा दिया, क्योकि उसे ज्ञात है कि श्रावण तृतीया आ गई है, उसकी बहिन झूलेगी। परन्तु झूलने वाली बहिन तो ससुराल मे ही है। इसी प्रकार पिता ने अपनी पुत्री के लिए सरोवर बनवाया था कि सावन की तीज पर मेरी पुत्री उसमे स्नान करेगी और माता ने उसके लिए चूडा चिरवाकर रख दिया है, किन्तु उसे पहनने वाली बाई तो ससुराल मे बैठी है—

चुडलो चितरा देई ए म्हारी माय,
सावणिया री तीजाँ बाई पहरसी।
चितरायो चुडो पडियो ए बाई मणियारो री हाट,
पहरण वाली बाई गौरी सासरे।[1]

माँ ने बेटी के कहने पर चूड़ा चिरवा दिया किन्तु उसको पहनने वाली बाई गौरी तो ससुराल मे बैठी है।

उक्त गीत मे भैया, पिताजी एव माताजी द्वारा विवाहिता पुत्री हेतु विभिन्न सामग्री तीज के त्योहार के अवसर पर तैयार की गई, किन्तु वह बेचारी ससुराल से आ न सकी। इस गीत मे बडी मार्मिक अभिव्यजना है

निम्न गीत को झूलते समय स्त्रियाँ बडे चाव से गाती हैं—

वन खड मे, हिन्दो बँदायो रेशम की डोर जी।
राणी रँणादे[2] हीदण बैठया धरती न झेले भार जी॥
सूरजजी ले ललकारो दीघो, ओ हिन्दो गयो गिरनार जी॥[3]

1 देखिए परिशिष्ट गीत-सख्या 15
2 रेखांकित नामों के स्थान पर अन्य देवी-देवताओं के नाम लिए जाते हैं।
3 राजस्थान के लोकगीत—स० ठाकुर रामसिंह आदि, पृ० 90

अर्थात् वनस्थली में झूला बँधवाया गया है, रेशम की डोर से। राणी रैणादे झूलने के लिए बैठी है। धरती उसके भार को झेलने में असमर्थ है। सूरजजी ने जोर से हिलोरा दिया कि झूला गिरनार गया।

इसी प्रकार इस झूले में रोहिणी ही नहीं सावित्री, गौरी और रुक्मणी आदि भी झूलती हैं और उनके पति चन्द्र, बला, ईसर, कृष्ण आदि क्रमशः सूरज जी की भाँति अपनी पत्नियों को ओर से हिलोरा देते हैं। इस प्रकार गीत काफी लम्बा चलता है।

जब लौकिक संसार की स्त्रियाँ झूला झूलें तो स्वर्ग की देवांगनायें क्यों पीछे रहें? लोकगीतों में जन-मानस की कल्पना सूर्य-चन्द्र को पृथ्वी पर खींच लाई है और भूमि उनके भार को सह नहीं पा रही है तथा झूला गगनगामी बन जाता है।

यहाँ झूले के लिए रेशमी डोर प्रयुक्त हुई है। हो भी क्यों नहीं जबकि स्वर्ग के देवी-देवता झूलने के लिए आए हैं? रेशम की डोर, धरती का भार न सहना तथा झूले के गगनगामी होने में अतिशयोक्ति का प्रयोग हुआ है।

(4) ससुराल के कटु अनुभूतिपूर्ण गीत

ससुराल में प्रत्येक नव-विवाहिता को कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जितनी स्वच्छंदता नारी को पीहर में रहती है, उतनी ही वह ससुराल में जाकर परतंत्र बन जाती है। ससुराल में सासु, ननद, जेठ, जेठानी आदि का कटु व्यवहार पीहर की स्मृति को उद्दीप्त कर देता है। ससुराल वालों का व्यवहार अपने अतीत जीवन की मधुर स्मृतियों को उभार देता है और उसकी वेदना द्विगुणित हो जाती है। यही वेदना के स्वर नारी ने न जाने कितने युगों से लोक-गीतों में सँजोए हैं।

ससुराल में अत्याचारों से जो व्यथा नारी-हृदय में होती है—उसका भार हल्का करने के लिए नारी ने लोकगीतों का आश्रय लिया है। नारी की दमित इच्छाएँ एवं आकांक्षाएँ इन गीतों में मुखरित होती हैं। ससुराल में नव-वधू को किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं होती है। उसे ससुराल के छोटे-बड़े सभी सदस्यों की आज्ञा का पालन करना होता है। उसे यहाँ कोई अधिकार नहीं प्राप्त होते। उसे मौन रहकर अन्याय तथा अत्याचार को सहना पड़ता है। वह उसके विरुद्ध एक शब्द भी नहीं बोल सकती। नारी ने अपने पर होने वाले अत्याचारों को लोकगीतों के माध्यम से समाज के सम्मुख रखा है। ये लोकगीत उसके वेदनामय जीवन के सबल हैं। यदि यह सम्बल नारी को प्राप्त न होता तो सम्भवत. वह समाज के अत्याचारों को सहन नहीं कर पाती। वह अपनी वेदना को हृदय में

नहीं रख पाती । उसके आँसू नयनों में वह निकलते और नारी समाज के अत्याचारों के विरुद्ध क्रान्ति कर देती, उसकी वेदना विस्फोट कर देती, उसके आँसू, आँसू न रहते बल्कि आग बन जाते जो हमारे समाज के एकपक्षीय नियमों को भस्मसात् कर देते । हमारी भारतीय नारी भी अपने अधिकार माँगती । परन्तु लोकगीतों में नारी ने राग विराग, घृणा-प्रेम, और सुख-दुःख की जी खोलकर अभिव्यक्ति कर दी जिससे उसे आत्म-सताप मिला । श्रीमती लक्ष्मीकुमारी चूँडावत ने भी लिखा है—लोकाचार और सामाजिक बंधनों में बँधी नारी-जाति को लोकगीतों का भावनापूर्ण और शक्तिशाली आधार न मिला होता तो न जाने क्या होता ? नारी हमारे समाज की आत्मा तथा गृहस्थ जीवन का मेरुदंड है और ये लोकगीत उस नारी की अन्तरात्मा की आत्मा हैं ।[1]

अब हम कुछ गीतों का विवेचन करेंगे जिनमें ससुराल की कटु अनुभूति के चित्र उपलब्ध होते हैं ।

आयो आयो माँ सावणिया रो मास ।
मने मेली माँ सासरे जी ॥
और सहेली, माँ, खिलण मिलण न जाय ।
मने दीनो माँ पिसणो जी ।[2]

हे माँ ! श्रावण का महीना आ गया, मुझे तूने ससुराल भेज दिया । मेरी अन्य सहेलियाँ तो हिल-मिलकर खेलने जा रही हैं । ऐसे समय में मेरी सासु ने मुझे पीसणा दिया है ।

पीस्यो पीस्यो माँ डाल दो डाल ।
अधमण पीस्यो माँ बाजरो ॥

मैंने डलिया दो डलिया पीस दिया । आधा मन बाजरा भी पीस दिया । अब शायद खेलने जाने की छुट्टी मिले, किन्तु—

मने दीधो, माँ, पोवणो ए ।
पोयी पोयी माँ रोटियों री ए जेट ॥

उसे रोटी पकाने के लिए आज्ञा मिल गई । उसने ढेर सारी रोटियाँ भी पका दीं । इसके पश्चात् भी जो उपेक्षा की गई उसका चित्र देखिए—

औरों ने तो माँ, घवसाँ घवसाँ ए खाँड ।
मने चिमठी माँ, लूण की जी ।

---

1 राजस्थानी लोकगीत—सं० रानी लक्ष्मीकुमारी चूँडावत, भूमिका, पृ० 3
2 राजस्थान के लोकगीत—स० ठाकुर रामसिंह आदि, पृ० 68

औरां ने तो माँ मरियाँ मरियाँ घी।
मने मरियो घाल्यो, तेल को ॥
औरां ने तो माँ, पलियाँ पलियाँ खीर।
मने माँ पलियो घाल्यो राब को जी ॥

ससुराल मे वधू के साथ सदा दुर्व्यवहार होता है। वधू अपनी माँ को सबोधन करके कह रही है कि हे माँ ! दूसरो को तो खूब शक्कर दी गई है, परन्तु मुझे केवल नमक की एक चिमटी दी गई, दूसरो को मरियां[1] भर-भर कर घी दिया गया, उस बेचारी को केवल एक मरिया तेल ही दिया गया। दूसरो को पलियाँ[2] भर-भर कर खीर दी गई, उसको राबड़ी[3] की केवल एक पली दी गई। इतने मे ही एक पीहर का काग आ जाता है, वह उसके हाथ में से बाजरे का टिक्कड छीन कर ले भागता है। वह उसके पीछे भागती है, किन्तु उसके पैर मे केर का काँटा चुभ जाता है तब वह कहती है—

ले जा ले जा म्हारी पीयर रा काग।
जाय देखाली म्हारी माँ ने ॥

हे काग ! तू यह टिक्कड़ मेरी माँ को दिखाकर आना। मानो यह टिक्कड़ ही पुत्री की समस्त व्यथा माँ से कह देगा। ससुराल के कष्टो का यही रूप कनउजी गीतो में भी देखने को मिलता है—

सासु तो बिरना मोरे अइसी निरदइनि भोजन कल ना देय।
रँधी मछरियाँ सीके धरी पै रोटी पै नून न देय ॥[4]

लोक-जीवन का वास्तविक स्वरूप इन लोकगीतो म दिखाई देता है। इनमे कल्पना के स्थान पर वास्तविक जीवन के चित्र अधिक हैं। कवियो ने नव-वधू को ससुराल में ले जाकर सयोग शृगार की अजस्र धाराएँ प्रवाहित की है। किसी कवि ने ससुराल म ले जाकर नायिका भेदोपभेद किए है तो किसी ने ऋतु वर्णन आरभ किया है, किन्तु किसी भी मर्मदर्शी कवि की दृष्टि मे इतनी शक्ति नही थी कि वे नव-वधू के ससुराल के कष्टो को देख सकें। उन्हे इतना अवकाश कहाँ ? उनकी नव-वधू को शृगार प्रसाधन मे ही छुट्टी न मिली और यदि मिली भी तो विप्रलभ शृगार की धाराएँ बहने लगी।

लोकगीतो मे हम जो भावचित्र मिलते हैं वे जनजीवन का प्रतिनिधित्व करते

---

1 एक प्रकार का लोहे का बना चम्मच
2 एक विशेष प्रकार का लोहे का चम्मच
3 खीचड़ी जैसा बाजरे या ज्वार का बना खाद्य पदार्थ
4 कनउजी लोकगीत—सतराम अनिल पृ० 267

हैं। इन चित्रों में जनजीवन का सत्य दृष्टिगत होता है। इन लोकगीतों में कल्पना की कोरी उड़ानें नहीं हैं। काव्य जगत की नायिका की भाँति हमारे लोकजीवन की नायिका कभी भी रोने के लिए नहीं रोई है। जब भी रोई है उसके रोने के पीछे गम्भीर पृष्ठभूमि रही है। जब भी उसके नयन-रूपी मेघों से जलवृष्टि हुई है, पहले उमस बढ़ गई है—

आय - आय सावणियाँ बूझैं बात,
थे कद आस्यो सावणिये पीर जी राज।
कयाँ - कयाँ देवूं मैं बाने जवाब,
नेण भरे हिवड़ो उलझे जी राज ॥[1]

यहाँ लोकजीवन की नायिका का हृदय बिना किसी कारण नहीं उमड़ रहा है। श्रावण मास में पीहर की स्मृति हो आना बहुत ही स्वाभाविक है—इस पर भी जब सहेलियाँ आकर यह पूछ लें कि श्रावण आ गया है तुम पीहर कब आओगी ? वह बेचारी क्या उत्तर दे ? उसकी यही स्थिति होना बहुत स्वाभाविक है।

(5) विरहिणियों के गीत

प्रवासी पति तीज त्योहार पर अवश्य घर लौट आते हैं। जो प्रवासी पति इस अवसर पर नहीं आ सकता वह भाग्यहीन समझा जाता है। उसे उसकी विरहिणी पत्नी उपालम्भ देती है—

होली न गणगोरियो, न आयो तीज्यां।
मिले ज म्हारा सायबो, ओनवो दीज्यो ॥

अर्थात्—मेरा पति न तो होली को आया, न गणगौर के अवसर पर आया और न तीज त्योहार पर—इसलिए यदि वह कहीं मिले तो उपालम्भ देना।

राजस्थानी स्त्रियाँ अपने विदेश जाने वाले पति से तीज त्योहार पर आने का अवश्य वचन ले लेती हैं। जब पति विदेश जाता है तो वे उसे शपथ दिलाकर कहती हैं कि तुम्हें मेरी सौगन्ध है, तुम तीज के त्योहार पर अवश्य आना, यथा—

थें म्हारे आज्यो सायबा, म्हारी सौं, तीजाँ री रात।

जब सावन की तीज पर भी प्रवासी घर नहीं आता है तो उसकी प्रतीक्षा में व्यथित नारी-हृदय की वेदना देखिए—

सावण आवण कह गया, कर गया कौल अनेक।
गिणताँ गिणताँ घिस गई, म्हारी आँगलियाँ री रेख ॥

---

1 देखिए परिशिष्ट गीत-संख्या 13

अर्थात्—श्रावण मास में लौट आने के लिए कह गया था और अनेक वचन देकर गया। भोली नायिका बेचारी अँगुलियों पर अवधि गणना करती रही, परिणामस्वरूप उसकी अँगुलियों की रेखाएँ ही घिसकर विलुप्त हो गईं।

चाहे हम इसे अतिशयोक्ति कहें, किन्तु विरही हृदय के ये उद्गार मर्मस्पर्शी अवश्य हैं। हमें इन पंक्तियों में वियोगिनी की प्रतीक्षा-व्याकुल स्थिति का आभास होता है। उसे प्रिय मिलन की कितनी आतुरता है कि वह अवधि गणना करते-करते अपनी अँगुलियां की रेखाओं को मिटा देती है।

ये उक्त दो पंक्तियाँ मीरा के एक पद में भी पाई जाती हैं। यह कहना कठिन है कि मीरा ने लोकगीतों से ली हैं अथवा मीरा ने लोकगीतों को दी हैं।

काव्य में तथा लोकगीतों में भी पक्षियों द्वारा संदेश भिजवाने की परम्परा रही है। निम्न गीत में एक वियोगिनी कोयल के द्वारा विरहिणी अपने प्रियतम को सन्देश भेज रही है—

> ओ डाल बैठी कोयलड़ी, यूँ क्यूँ न टेरूको मारे।
> जाय ढोलाजी ने यूँ कहिजे, पहली तीज पधारे।
> खरची दिराऊँ म्हारा बाप री ओ जी।
> घुड़ला दिराऊँ म्हारा बाप रा ॥[1]

जैसा कि हम इसी अध्याय के आरम्भ में कह चुके हैं कि विवाह के पश्चात् पहले श्रावण मास में नव-वधू पीहर में रहती है। ऐसी प्रथा राजस्थान में प्रचलित है। पति को भी इस अवसर पर अपने ससुराल जाना अनिवार्य होता है। प्रस्तुत गीत में नव वधू को आशंका है कि उसके पति नहीं आएँगे इसलिए वह डाली पर बैठी कोयल के साथ अपने पति को आमंत्रित करती है। वह कोयल से कहती है कि तू डाली पर बैठी क्यों कूक रही है। जा मेरे साजन से कहना कि वे प्रथम तीज के अवसर पर अवश्य आयें। यदि उनके पास आने के लिए मार्ग-व्यय आदि न हो तो मैं अपने पिताजी से व्यय लेकर भेज देती हूँ और उन्हें घोड़े भेज देती हूँ, किन्तु उनसे कहना कि वे प्रथम तीज के अवसर पर अवश्य आवें। किन्तु नायक की भी अपनी परिस्थितियाँ हैं, अपनी विवशता है—

> खरची घणी है मारी मारुणी।
> नहीं है राणजी री सीख ॥
> घुड़ला घणा है म्हारी मारुणी।
> पण नहीं देवे राणोजी म्हाने सीख ॥

हे प्रियतमे! धन और घोड़ों का तो मेरे पास भी अभाव नहीं है किन्तु राणाजी

---

1 देखिए परिशिष्ट गीत-संख्या 9

की आज्ञा नही है। वे मुझे सीख (विदा) नही दे रहे हैं। परवशता है। वैसे नायक के हृदय में भी मिलन-कामना का अभाव नही है। उसे भली भाँति ज्ञात है कि उसकी पत्नी वियोग मे व्याकुल है। नायक हृदय की मर्म-व्यथा 'राणाजी विदा नही देते' मे स्पष्ट उभर आई है। प्रियतमा को दिए गए वचनो को वह कैसे विस्मृत कर सकता है ? किन्तु उसकी विवशता-परवशता ने ही उस प्रिया-मिलन से विमुख कर दिया है। नायक के शब्दो में—

बादल चमकै बीजली, रिमझिम बरसै मेह।
काग उडावै कामिणी, राजा सीख न देह ।।

मेघो मे दामिनी चमक रही है, रिमझिम वर्षा हो रही है, घर पर कामिनी काग उडा रही है (प्रतीक्षा कर रही है—शकुन मना रही है) परन्तु यह राजा जाने की आज्ञा नही देता। श्रावण के मेघ बरसते गए। नदियाँ जल मे आप्लावित हो गई, तब राणाजी ने घर जाने की आज्ञा दी, किन्तु—

आडी तो गौरी नदियाँ फिर रही जी कोई।
वैरण तो हुई है बनास।

उसके मार्ग को तो नदिया ने अवरुद्ध कर लिया। बनास तो उसकी वैरण (शत्रु) ही बन गई। इस वैरण शब्द मे नायक के हृदय की व्यथा मुखरित हो गई है।

नायिका को जब यह ज्ञात हुआ कि उसके प्रियतम केवल नदी द्वारा मार्ग अवरुद्ध हो जाने से नही आ पा रहे हैं तो वह कीर के (केवट के) पुत्र को अपना भाई बना लेती है और उससे अनुनय करती है कि वह उसके प्रियतम को पार उतार दे—

कीर रा बेटा म्हारा बीरा,
म्हारा ढोला जो ने पार उतार।

किन्तु कीर का बेटा बिना अपना पारिश्रमिक लिए कैसे पार उतार दे ? वह पूछता है—

कोई तो देसी रीझ रो बाई म्हाने ?
कोई तो देसी इनाम ?

हे बहिन ! तू मुझे क्या तो उतराई देगी और क्या इनाम देगी ? इस पर उसका उत्तर सुनिए—

कडियो री कटारी थाने देस्यूं बीरा।
म्हारा सेज चढ्यां रो सिर पाव ।।

हे भाई ! तू मेरे प्रियतम को पार उतार दे, मैं तुझे अपनी कमर की कटारी दूंगी। यहाँ कमर की कटारी देना महत्त्वपूर्ण है । राजस्थानी वियोगिनी स्त्रियाँ अपनी कमर में कटार रखती हैं जिससे कि वे समय पड़ने पर अपने सतीत्व की रक्षा कर सकें । किन्तु अब उसके सतीत्व का रक्षक उसका प्रियतम आ रहा है इसलिए अब उसे इस कटारी की आवश्यकता ही नहीं रहेगी और वह उस कटारी को प्रियतम से मिलाने वाले वीर-पुत्र को दे देगी। यही-नहीं, वह अपने प्रियतम का सिरपाव (सिर से पाँव तक धारण करने के वस्त्र) भी उसे दे देगी।

राजस्थानी लोक-साहित्य का प्रसिद्ध पक्षी है—कुर्जं । राजस्थानी भाषा में विरहिणी तीज के अवसर पर उसको भी प्रियतम का सन्देशवाहक बनाती है—

तू कुर्जां म्हारी भायेली ए,
तू है धरम री बैण।
कुर्जां ए म्हारो पीव मिला दे।

हे कुरजां ! तू मेरी प्रिय है, तू मेरी धर्म की बहिन है, तू मुझे मेरे प्रियतम से मिला दे । नारी-हृदय की पीड़ा को एक नारी ही भली-भाँति समझ सकती है, फिर वियोगिनी के अनुरोध पर कुरजां भला कैसे अस्वीकार कर दे—वह कहती है, तू मेरी चोंच पर उपालंभ लिख दे और मेरे पंखों पर प्रियतम को सात सलाम भी। हे बहिन ! मैं तुझको तेरे प्रियतम से मिलाऊँगी। विरह-विदग्धा ने कुरजां के पंखों पर जो सन्देश लिखा है वह हृदय की सच्ची पुकार है। वह लिखती है—सावन-भादों की वर्षा हो रही है, छप्पर पुराने पड़ गए हैं, बाँस फट गए हैं। बिजली चमकती है तो तुम्हारी प्रिया तुम्हारे अभाव में भयभीत होती है ।

इसी तरह का भाव जायसी ने अपने पद्मावत में नागमती वियोग खंड में भी किया है—

दादुर मोर कोकिला पीऊ। कर्गहि बेझ घट रहै न जीऊ।
पुष नक्षत्र सिर ऊपर आया। हौं बिनु नाँह मन्दिर को छावा।

प्रिय से वियोगिनी यहाँ तक कह देती है—

असी रे टकाँ री ढोला चाकरी रे,
लाख टकाँ री थारी नार।
अब घर आजा गोरी का सायबा।

हे प्रियतम ! अब तुम यह अस्सी टकों की दासता छोड़कर घर आ जाओ, क्योंकि तुम्हारी पत्नी लाख टकों की है। अब विरहिणी अपनी सहेलियों से पूछती है—

वन मे लिपटी तरु वेली।
सावण रमे है तीज सहेली।।
अब रह्यो क्यूं जाय अकेली।
म्हारो कंत आसी कद हेली ?

वन मे वेलें वृक्षो से लिपट गई है। मेरी सब सखियाँ तीज खेल रही हैं। मैं किस प्रकार अकेली रहूँ ? हे सखि ! मेरे प्रियतम कब आएँगे ? अन्त मे वह खीझकर कहती है—

जो तू सायबा न आवसी, सावण पेली तीज।
बीजल तई मबूरडी, धण मर जावे खीज।।

हे प्रियतम ! यदि तुम सावन की पहली तीज पर न आए तो तुम्हारी पत्नी बिजली के साथ खीज कर मर जाएगी। यही नही, वह अपने प्रियतम के प्रेम को भी चुनौती देती है—

आज धरा दिस उमग्यो, मोटी छटां मेह।
भीगी पागां पधारज्यो, जद जाणूंली नेह।।

आज मोटी बूँदा वाला मेह बरसने लगा है। अब अगर तुम भीगी पगडी लिए आओगे तभी समझूँगी कि तुम सचमुच स्नेह करते हो।

नायिका हताश होकर कहती है—

कागज हो तो बाँच ल्यूं जी ढोला।
करम न बाँच्यो जाय।
बालक हो तो डाट ल्यूं जी ढोला।
जोवन डाँट्यो न जाय।।

कागज हो तो पढ लूँ किन्तु भाग्य नही पढा जा सकता। अगर बालक हो तो उसे डाँट भी लिया जावे किन्तु यौवन नही डाँटा जाता। इसलिए साजन ! अब घर आ जा, क्योकि—

गरजण लागी बादली, हिवडे उमड्यो मेह।
बरसण लागी तीजणी, फडकण लागी देह।।

बादल गरजने लगा है, हृदय मे प्रेम उमड आया है, तीजनियाँ (बादली) बरसने लगी हैं जिससे देह फडकने लगी है। परन्तु इस विरह की रसमयी मर्मोक्तियो का केन्द्र बिन्दु तो वही प्रियतमा है जो प्रियतम की प्रतीक्षा मे सदा यही कहती रहती है—

घर-घर चगी गोरडी, गावै मगलाचार।
कता मत ना चूकज्यो, तीज्यां तणो तिवार ॥

घर-घर मे सुन्दर युवतियां मगल गीत गाती हुई कहती हैं कि हे कत ! इस तीज त्योहार पर अवश्य आना, चूकना मत।

चतड़ा-चौथ

चतडा-चौथ या गणेश चतुर्थी का सम्बन्ध विशेषकर विद्यार्थियो से है। यह विद्यार्थियो का एक त्योहार है। इसे विभिन्न नामो से पुकारा जाता है जैसे पत्थर-चौथ, घट्टा-चौथ, चकडा-चौथ आदि। भाद्रपद शुक्ला तृतीया के दिन सायकाल के समय सब विद्यार्थियो के घर मे मिठाई आदि स्वादिष्ट खाद्य सामग्री तैयार की जाती है। बच्चे अपने हाथो मे मेहदी लगाते हैं। दूसरे दिन बालक नये वस्त्र पहनकर अपने हाथो मे डडिये लेकर भोर मे ही घर से निकल जाते हैं और पाठशाला मे एकत्र हो जाते हैं। वहाँ वे गणेश जी की पूजा-अर्चना करते हैं। पूजा-वन्दना करने के पश्चात् बालक नाचते-कूदते पाठशाला से निकल पडते है और डडियों की चोट पर गाते हुए चलते हैं—

चतडा चौथ भाँदूडो।
दे-दे भाई लाडूडो॥
लाडूडा मे पान सुपारी।
चौथी राणी हुई बिराणी॥
सुण-सुण ए रामा की माँ।
थारो बेटो पढवा जाय॥
पढवा की पढ़ाई दे।
गुराँ सा'ब ने पाग बँधा॥
गुराणी ने वेस दिया।
चतडा ने चार लाडूडा दिरा॥[1]

प्रस्तुत गीत मे बालको के स्वाभाविक हार्दिक भावो का प्रदर्शन मात्र है। बालको के गीतो मे गाभीर्य ढूँढना निरी मूर्खता होगी। इसमे स्वाभाविक रूप से लय मिलाई गई है चाहे लय को मिलाने के लिए जो शब्द प्रयुक्त हुआ हो उसका कोई अर्थ भी नही निकले। यह प्रवृत्ति अन्य गीतो मे भी पाई जाती है। केवल लय

---

1. देखिए परिशिष्ट गीत सख्या 1

मिलाने के लिए एक शब्द या पंक्ति की पुनरावृत्ति की जाती है, यद्यपि वहाँ उससे कोई अर्थ न निकले। यह केवल तुक मिलाने के लिए किया जाता है। प्रसिद्ध भाषाविद् डा० ग्रियर्सन ने लिखा है—पढ़ते समय छन्द के नियम के अनुसार ये विरले शायद ही मिलें, जब तक हम यह याद न रखें कि बहुत से दीर्घ स्वर पढ़ते समय लघु कर लिए जाएँ। इनमें कभी-कभी कुछ ऐसे भी व्यर्थ के शब्द होते हैं जो छन्द के अनुकूल नहीं होते।[1] यद्यपि डा० ग्रियर्सन ने यह बिरहा गीतों के सम्बन्ध में लिखा है किन्तु यह बात अन्य गीतों के सम्बन्ध में भी सत्य है।

उक्त गीत की प्रथम पंक्ति में भाडूरो शब्द आया है जिसका अर्थ नहीं निकाला जाता है। किन्तु भाडूरो शब्द जो इसकी दूसरी पंक्ति में प्रयुक्त हुआ है उससे इसकी तुक मिलाने के लिए इस शब्द का प्रयोग किया गया है। वैसे यदि हम खींचातानी करें तो यह कह सकते हैं कि भाडूरो शब्द भाद्रपद का अपभ्रंश द्वारा प्रयुक्त शब्द है। इससे हम इसका अर्थ भी यह कर सकते हैं कि चतड़ा-चौथ भाद्रपद में है इसलिए हे भाई, लड्डू दे दे। लड्डू के साथ पत्ता सुहाती है पोथी सारी बिखरी हो गई है। यहाँ तक गीत में कोई अर्थ सम्बन्ध न होकर केवल तुक स्वर-समूह का आकलन किया गया है। वैसे भी यह प्रत्यक्ष है कि बच्चे कुछ ऐसा ही गीत गाते हैं तथा बोलते हैं जिससे कि कोई अर्थ ग्रहण करना कठिन है। बालकों की यह प्रवृत्ति होती है कि वे बिना किसी अर्थ की अपेक्षा किए कुछ बोलते या गाते रहते हैं। गीत की पंक्तियाँ इसी बात की द्योतक हैं।

आगे गीत में राम की माँ से बालक कहते हैं कि हे राम की माँ! सुन-सुन, तेरा लड़का पढ़ने जा रहा है। इसलिए तू उसके पढ़ने की पढ़ाई दे और गुरुजी को तू पगड़ी बँधा। यही नहीं, वे गुरु-पत्नी को वेश देने की भी अपील करते हैं। साथ ही गाने वाले बच्चों (चटा) को थाल लाडू देने की भी कहते हैं।

यहाँ हम देखते हैं कि बालकों की हार्दिक भावना व्यक्त हुई है। साथ ही प्राचीन लोक-परम्परा की ओर भी यहाँ संकेत है। प्राचीन काल में विद्यार्थी के माता-पिता अध्यापक को तथा अध्यापक की पत्नी को ज्ञान-दान करने के फल-स्वरूप कुछ भेंट दिया करते थे। वही स्वरूप यहाँ भी दृष्टिगत होता है। आज राज्य के द्वारा चाहे निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था क्यों न कर दी गई हो, किन्तु आधुनिक बालक तो आज भी उस परम्परा का स्मरण अवश्य करते हैं। यही नहीं, अभी भी प्राथमिक पाठशालाओं में बालक चतड़ा-चौथ के दिन गुरुजी को नारियल-

---

1. इन रीडिंग देम, बिरहाज़, दे विल रीयली बी फाउण्ड टू ऐग्री विथ दिस, अनलेस वी रिमेम्बर दैट मेनी लोंग सिलेबिल्स मस्ट बी रेड ऐज़ शोर्ट दैट इज़ बन इरलेवेंट सम-टाइम्स देयर आर सुपरफ्लुअस वर्ड्स व्हिच डू नोट फार्म पार्ट आफ दी मीटर।
—जे० ए० एस० बी० वोल्यूम 54 (1885 ई०) पार्ट 1, पृ० 35

मिठाई आदि भेंट देते हैं। परम्परा का एक परिवर्तित रूप हमारे समक्ष आज भी अवश्य है। पाठशाला के सभी बालक आज भी चतडा-चौथ के दिन प्रत्येक विद्यार्थी के घर जाते हैं तथा गाते हैं—

आलो ढूंढ वयालो ढूंढ।
बडी वहू को बुगचो ढूंढ।
छोटी वहू की पेटी ढूंढ।
ढूंढ ढांढकर बारे आव।
जोशीजी ने रिप्यो नारेल दिराव।।

इसमें फिर बालक विद्यार्थी की माँ से कहते हैं कि असमारी ढूंढो, वयालो (छोटी ताक) ढूंढो, बडी बहू को सन्दूक ढूंढो, छोटी बहू की सन्दूक (पेटी) ढूंढो और ढूंढ-ढांढ कर बाहर आओ तथा जोशीजी को रुपया तथा नारियल दो। बालक विद्यार्थी की माँ से देखिए किस हार्दिक निश्च्छलता से माँग कर रहे हैं। जैसा कि ऊपर कह आए हैं, आज भी अध्यापक को रुपया तथा नारियल देने की प्रथा चतडा-चौथ के दिन पाई जाती है।

इस त्योहार पर एक मात्र विद्यार्थियों का अधिकार है। वे इस त्योहार को बडी उमग तथा उत्साह से मनाते हैं। राजस्थान म ही नही मध्य भारत तथा गुजरात मे भी इस त्योहार का आयोजन किया जाता है।

इस अवसर पर गणेश-पूजन किया जाता है। गुजरात व महाराष्ट्र म गणेश जी की मूर्ति का एक भव्य जलूस निकाला जाता है जिसमे स्त्री-पुरुष सम्मिलित होते हैं। मध्य भारत मे भी यही परम्परा है। वहाँ भी गणेशजी की मूर्तियो का पूजन होता है।

दीवाली के गीत

अन्य त्योहारो के समान ही राजस्थान मे कार्तिक कृष्णा चौदहश को दीपावली का पर्व भी बहुत ही उल्लासमय वातावरण मे मनाया जाता है। दीपावली दीपो का पर्व है। इस पुण्य पर्व पर निर्धनो की झोपडियो से लेकर धनवानो की ऊँची अट्टालिकाओ पर दीप सँजोए जाते हैं। दीपको की झिलमिलाहट मे बालक हँसते-खेलते और गाते हैं। गृहलक्ष्मियाँ लक्ष्मी पूजन करती हैं तथा दीवाली के आगमन पर अपने घरो की सफाई करवा लेती हैं। आँगन म विभिन्न प्रकार के रगो द्वारा विभिन्न प्रकार की चित्रकारी भी की जाती है। इन्हे राजस्थानी भाषा म माँडने कहा जाता है। महिलाएँ अपने कोकिल कण्ठ से वातावरण को मुखरित कर देती हैं। बच्चो के पटाखो की ध्वनि और फुलझडियो का प्रकाश भी वातावरण की मनोहरता को द्विगुणित करता है। बालको की टोलियाँ भोजन आदि से निवृत्त होकर हीड[1] बोलने निकलते हैं। वे घर-घर आकर हीड बोलते हैं। गृह-स्वामी उनका सत्कार करता है और उन्हे मिठाई आदि देकर विदा करता है। बालको के हाथ मे एक मिट्टी का विशेष प्रकार का दीपक होता है जिसमे तेल आदि डाल-कर आग प्रज्वलित कर ली जाती है। प्रत्येक घरपर इस हीड मे तेल डाला जाता है और हीड बोलने वालो को मिठाई आदि देकर विदा किया जाता है।

दीवाली के गीतों को हम इन तीन भागो मे विभक्त कर सकते हैं—

(1) हीड (बालको के गीत),

(2) स्त्रियो के दीवाली सम्बन्धी गीत,

(3) अन्य गीत।

(1) हीड (बालको के गीत)

हीड मुख्य रूप से बालको का गीत है, इससे बालक अपना मनोरजन भी करते हैं तथा परम्परा का पालन भी। हीड को [कुछ] स्थानो पर हरणी के नाम से भी अभिहित किया जाता है।

---

1 गान-विशेष

हरणी ए हरणी थूँ क्यूँ दुबली ए?
चाल म्हारे देश ! नुई मक्की की घुघरी रे।
नुई तल्ली को तेल ! सल्ला साय जादी लोडी ।।[1]

उपयुक्त पक्तियाँ हरणी गीत की प्रारम्भिक पक्तियाँ हैं। बालक हरणी को देखता है कि वह बहुत दुर्बल है तो उससे बाल-हृदय प्रश्न करता है—हे हरणी ! तू इतनी दुर्बल क्यो है? इसलिए कि वह दुर्बल है, बालक उसे अपने देश चलने का निमत्रण देता है, जहाँ नई मक्को घुघरी[2] तथा नये तिलो का तेल उसे खाने देने का प्रलोभन देता है। सल्ला सायजादी लोडी गीत की टेक है जिसका कोई अर्थ नही है। इन पक्तियो मे राजस्थानी शरदकालीन प्रिय भोजन घुघरी, जिसम तेल डालकर खाया जाता है, का उल्लेख है। यह लोकरुचि की ओर सकेत है। इसके साथ ही कार्तिक मास तक नई मक्की तथा नये तिल उत्पन्न हो जाते हैं जिनका सकेत यहाँ स्पष्ट है। इस प्रकार इसके द्वारा हम राजस्थान के लोक रुचिकर भोजन के साथ-साथ राजस्थान की भौगोलिक स्थिति का भी पता चलता है। इसी मे आगे देखिए—

मूँ तो हरणी गावा निकल्यो रे।
कूण मिल्यो दातार नीली घोडी रो सवार?
रामजी दुनियाँ को दातार।।

अब वह कहता है कि मैं तो हरणी गाने के लिए निकला। वह प्रश्न करता है कि ऐसा कौन दातार मिला जो नीली घोडी का सवार है? इसका उत्तर स्वय ही दे देता है कि वह रामजी हैं जो दुनिया के दाता हैं। ऊपर हम कह आए हैं कि बालक जब हरणी अथवा हीड गाने के लिए निकलते है तो उन्हें कुछ मिठाई आदि देकर विदा किया जाता है। उसी की ओर इन पक्तियो म सकेत है कि वह कौन व्यक्ति है जो दातार है अर्थात् जिसने हरणी गान वाले बालको को उदारतापूर्वक दिया है। आगे वही बाल-सुलभ कल्पना है कि बालको को उदारता-पूर्वक देने वाला सभवत' नीली घोडी पर सवारी करने वाला ही होगा। फिर वह हरणी मे प्रश्न करता है कि तुझे किसने रँगा है? उत्तर मे हरणी कहती है कि मुझे रामा भील ने रँगा है। तो रामा भील को बुलाया जाय और उसकी नाक म तीर डाला जाए।

इससे आगे कहा है कि आम मालवा मे उत्पन्न हुआ उसको डाली गुजरात म लगी और उसके जो फल लगे वे द्वारकानाथ खा गए। इस प्रकार गीत समाप्त

1 देखिए परिशिष्ट गीत सख्या 3
2 मक्की को उबाल कर तैयार किया जाने वाला खाद्य पदार्थ

होता है। उक्त सम्पूर्ण गीत में हमको बाल-हृदय के स्वाभाविक उद्गार ही दृष्टि-गोचर होते हैं। यद्यपि गीत को पढ़ने से या अर्थ करने में इसमें कोई विशेष सौंदर्य नहीं दिखाई देता, किन्तु जब हम इसी गीत को बालकों के मुँह से सुनते हैं तो गीत बहुत ही प्रिय एवं मनोहर लगता है।

हरणी एक तारा होता है जो कि कार्तिक में उदय होता है। उसके लघु आकार को देखकर ही बालक के मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई होगी।

इसके अतिरिक्त एक छोटा गीत जो कि अजमेर के आसपास के क्षेत्र मगरे में प्रचलित है निम्न रूप से गाया जाता है—

> हीडले रे हिन्डोल्या, पाले पाले घूघेल्या।
> बीकानेर की छुडकली काते नैन्यो सूत ॥
> सूत लेर लावोरिया मरघें माजन लोग ॥[1]

अर्थात्—हे हीड बालने वाले हिंडोलिये तू हीड लेकर चल। बीकानेर की चिड़िया महीन सूत कातती है। ए सूत के खरीददार तू सूत ले जिसको महाजन लोग भी निरीक्षण करें।

उक्त गीत में घूघेल्या तथा लावोरिया शब्द आए हैं जो केवल टेक मिलाने के लिए हैं। इनका कोई अर्थ नहीं निकाला जा सकता। साथ ही एक बात और स्पष्ट होती है कि मगरे की बोली में स ध्वनि ह में परिवर्तित हो जाती है। इस गीत में बीकानेर की चिड़िया का महीन सूत कातने का संकेत है। सम्भवतः कभी बीकानेर में बारीक सूत काता जाता हो। बालकों के गीतों में भाव-गाम्भीर्य तथा निरर्थक शब्दों का प्रयोग अन्य गीतों की अपेक्षा अधिक मिलता है।

(2) स्त्रियों के दीवाली सम्बन्धी गीत

दीपावली दीपों का पर्व माना गया है फिर क्यों न राजस्थानी नारी इस अवसर पर दीप की कल्पना करे?

> सोने रो म्हे दिवलो घडास्याँ।
> रेशम बाट बटास्याँ जी ॥[2]

कल्पना ही तो ठहरी फिर क्यों न वह सोने का दीप बनवाए और यदि उसकी बत्ती बनवानी है तो वह क्यों न रेशम की ही हो? सम्भवतः लोकगीतों के संसार में सोने तथा रेशम का कोई अभाव ही नहीं है। यही नहीं, कल्पना की दूसरी उड़ान भी देखिए—

---

1 देखिए परिशिष्ट गीत-संख्या 4
2 देखिए परिशिष्ट गीत-संख्या 1

चार बाद रो चौमुख दीवो,
घी सूँ म्हें पुरवास्याँ जी।
चाँदी रो थाल मेल म्हारो दीवलो,
रंग मेल म ले जास्याँ जी।
मेई मई बाट सुरग म्हारा दीवलो,
रंगमेल में ले जास्याँ जी॥

जब उसने सोने का दीपक तथा रेशम की बत्ती बना ही ली तो वह दीपक क्यों न चार मुख (चार बत्तियों युक्त) हो ? वह क्यों नहीं उसमें घी डालकर जलाए ? तेल डाला ही क्यों जाए ? अब उसे ज्लाने ले जाना है तो क्यों नहीं चाँदी के थाल में रखकर ले जाया जाये ? जब इतनी मूल्यवान सामग्री एकत्र की है तो क्यों न वह दीपक रंगमहल में जलाया जाए ? उस दीपक की बत्ती महीन-महीन है तथा वह उसको रंगमहल में ले जाएगी।

उक्त गीत में सोने का दीपक, रेशम की बत्ती, चाँदी का थाल तथा रंगमहल आदि उपकरण लाए गए हैं जोकि वास्तविक जीवन में संभव नहीं। किन्तु लोक-गीत-गायक की कल्पना में इन उपकरणों को एकत्र कर लेना कोई कठिन कार्य नहीं। यहाँ अतिशयोक्ति का प्रयोग हुआ है।

एक स्त्री अपने प्रवासी प्रियतम को दीपावली घर पर मनाने का आग्रह कर रही है—

दसरावा रो मुजरो दीवाल्याँ घर ही करज्यो जी ढोला।
काँई काँकडियाँ पधारिया जी ढोला, काँकडियाँ कलश बँदाया जी ढोला।[1]

हे प्रियतम ! दशहरा का मुजरा (पति को नमस्कार के लिए प्रयुक्त होने वाला शब्द) करती हूँ, आप दीवाली घर पर मनाना। आप जब जंगल में जायेंगे, आपको कलश से बंदाया (स्वागत) जाएगा। आगे जब आप बाग में पधारेंगे तो बाग में माली पुष्पों से आपका स्वागत करेगा। जब आप चौहटे (गाँव के मैदान) में आवेंगे तो वहाँ चँवर ढुलवाए जाएँगे। यही नहीं—

काँई दरवाजे पधारिया जी ढोला, दरवाजे हस्ती झुकायाजी ढोला।
काँई मेलाँ में पधारिया जी ढोला, काँई मेलाँ में मंगल गाया जी ढोला।
काँई दसरावो रो मुजरो, गढपतिया राजा आवो जी मेलाँ।
दीवाल्याँ घर री करज्यो जी ढोला॥

हे प्रियतम ! जब तुम द्वार पर आओगे तो द्वार पर आपकी सवारी के लिए

1 देखिए परिशिष्ट गीत-संख्या 2

हाथी मुकवा दिया जाएगा। जब आप महल मे आएँगे तो महलो मे आपके स्वागतार्थ मगल गीत गाए जाएँगे। हे गढपति राजा ! दशहरा का नमस्कार। आप घर पधारो, दीवाली घर ही मनाइये।

इस गीत मे नायिका का प्रवासी प्रियतम दशहरा पर भी घर नहीं आया है, इसलिए दशहरा को वह नमस्कार करती है। राजस्थान म प्रत्येक त्योहार पर अपने प्रियजनो को शुभ सदेश भेजने उन्हें नमस्कार आदि करने की प्रथा रही है। उसी का सकेत यहा स्पष्ट है। गीत म विदेशी के आगमन पर विभिन्न स्थानो पर स्वागत करने का भी आयोजन है जो विभिन्न गीतो म उपलब्ध है तथा यह परम्परा भी है। हाथी झुकाना, चँवर दुलवाना, महलों म निमत्रित करना राजसी वैभव के द्योतक हैं।

एक अन्य गीत म दाम्पत्य जीवन का दीपक के साथ सुन्दर रूपक बाँधा गया है। साहित्य म भी रूपक बाँधा जाता है। किन्तु लोकगीतो की यह अनूठी रूपक योजना किसी भी साहित्य की रूपक योजना के समक्ष फीकी नही दिखाई दे सकती—

कुणी जी रा दीवला म, कुणी जी री बाट।
कुणी जी री राणियाँ, घम घम घी भरे ?[1]

अर्थात् किसके दीपक म किसकी बाती है ? किसकी राणियें उस दीपक म घम घम घी भर रही है ?

कुणी सा रो दिवलो, न कुणी सा री बाट ?
कुणी सा री बाटडी जागेगी जो सारी रात ?

किसके दीपक मे किसकी बत्ती है जो सारी रात्रि भर जग रही है ? अब इसका उत्तर भी सुनिए—

सुरग म्हारी नणदल नणदोई री बातां।
पिया जी रो हेत, जले जी सारी रातां॥

मेरी सुरग ननद है जो दीपक है ननदोई (ननद के पति) जी की बातें उसकी बत्ती है, और प्रिय का जो प्रेम है, वह तेल के स्थान पर सारी रात जलता रहता है। जब इतना सुन्दर दीपक बन गया है तो उसके प्रति हृदयोद्‌गार देखिए—

बलजे म्हारा दिवला रे सारी रात।
जलजे म्हारा दिवला रे सारी रात॥
थारी मजल बाट, बलजे म्हारा दीवला सारी रात।

---

1 देखिए परिशिष्ट गीत-सख्या 7

हे दीपक ! तू सारी रात जलना, तेरी वत्ती मगल की है अर्थात् शुभ है। हे मेरे दीपक ! तू सारी रात जलना।

कितने स्वाभाविक एव नैसर्गिक रूप से रूपक का आयोजन लोकगायक ने किया है। अन्त मे अब अन्य गीतो का विवेचन करना पर्याप्त होगा।

(3) अन्य गीत

दिपावली कार्तिक मास का त्योहार है। कार्तिक मास शरद् ऋतु के अन्तर्गत आता है। जिस प्रकार तीज त्योहार पर तीज से सम्बन्धित गीतो के अतिरिक्त वर्षा ऋतु सम्बन्धी गीत भी गाए जाते हैं, उसी प्रकार दीपावली के अवसर पर भी शरद् ऋतु से सम्बन्धित गीत दीवाली के अवसर पर गाए जाते हैं। निम्न गीत शरद् ऋतु से सम्बन्धित है—

> रतन सियालो राजन यूँ ही गयो जी।
> उनाला रा चार मीना, चौमासा रा चार मीना ।।
> सियाला रा लागे थोडा थोडा, म्हारा जोडी रा। रतन०
> उनाला रा पोमचो, चौमासा रा लेरियो।
> सियाला रा फागणियो, छपावो म्हारा जोडी रा। रतन० ।[1]

अपने पति को सम्बोधित करके एक स्त्री कहती है कि शरद् ऋतु यो ही निकल गई। ग्रीष्म के चार मास, वर्षा के चार मास तो मालूम होते हैं किन्तु शरद् के चार मास थोडे-थोडे लगते हैं और यो ही निकल जाते हैं। हे मेरे प्रियतम ! ग्रीष्म मे तुम मेरे लिए पोमचा (सिर पर ओढने का वस्त्र), वर्षा ऋतु के लिए लहरिया (सिर पर ओढने का वस्त्र) और शरद् ऋतु मे फागणिया (सिर पर धारण करने का वस्त्र) छपाइये। यही नही, नायिका अपने पति से यह भी बताती है कि किस ऋतु मे कहाँ रहना चाहिए। ग्रीष्म मे पिता के यहाँ, वर्षा मे मामा के यहाँ, किन्तु वह कहती है कि शरद् मे मुझे साथ ले चलिए। सयोग के लिए शरद् ऋतु उत्तम मानी गई है। अब देखिए, नायिका विभिन्न ऋतुओ मे सोने के लिए उपयुक्त स्थानो का भी निर्देशन गीत की पक्तियो मे कर रही है—

> उनाला रा चौक म, चौमासा रा मेडी मे।
> सियाला रा ओरिये पोढाबो म्हारा जोडी रा। रतन० ।।

वह कहती है कि ग्रीष्म मे प्रागण मे, वर्षा ऋतु मे मेडी (दूसरी मजिल पर बना खपरैल का मकान) मे तथा शरद् ऋतु मे वह ओवरिया (वद मकान) मे सोने का आग्रह करती है। अन्त मे वह कहती है—

1. देखिए परिशिष्ट गीत-सख्या 5

उनालो फेर आवेलो, चौमासो फेर आवेलो।
सियालो फेर आवेलो, गियोड़ो जोवन नही आवेलो ॥
पाछो म्हारा जोड़ी रा। रतन० ॥

अर्थात्—ग्रीष्म ऋतु पुनः आएगी, वर्षा ऋतु पुनः आएगी, शरद् ऋतु फिर आएगी, किन्तु गया हुआ यौवन लौटकर नही आएगा।

उक्त गीत शृंगार-प्रधान है। ऋतु तथा उसके अनुसार पहनने योग्य तथा सोने के स्थानो का गीत मे निर्देशन है। इस प्रकार के ऋतु गीतो को भी महिलाएँ ऋतु के अनुसार आने वाले त्योहार विशेष पर गाती हैं। पोमचा, सहरिया तथा फागणिया ऋतु-विशेष के अनुसार ओढे जाने वाले "ओरणे" हैं, जिनका ऋतुओ के साथ उल्लेख किया गया है।

तुलसी-पूजन

कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष मे तुलसी का त्योहार मनाया जाता है। बालिकाएँ एव स्त्रियाँ तीन दिन तक तुलसी पूजन करती हैं तथा व्रत रखती हैं। व्रत की समाप्ति पर तुलसी और शालिग्राम का विवाह कराया जाता है और श्रद्धानुसार दान-पुण्य किया जाता है। तुलसी का पौधा राजस्थान के ही नही किन्तु भारत के प्रत्येक घर मे मिलता है। इसको बहुत ही पवित्र समझा जाता है। शालिग्राम एव तुलसी का पति-पत्नी का प्रेम पूजनीय एव आदर्श समझा जाता है।

कार्तिक मास की पूर्णिमा को वैकुण्ठी पूर्णिमा के नाम से पुकारा जाता है। शारदीय पूर्णिमा तथा कार्तिकीय पूर्णिमा के मध्य आने वाले चार रविवार जो कि सूर्य के प्रतीक रूप मे एव एक इच्छावनी और दो एकादशी व्रत के साथ मनाई जाती हैं। रविवार के व्रतो मे आँवले के वृक्ष की छाया तले बैठकर व्रत खोलती हैं, उसकी परिक्रमा करती हैं, किन्तु वास्तव मे ये सारे आयोजन एकमात्र तुलसी के बिरवा और शालिग्राम के निमित्त किए जाते हैं। तुलसी-पूजन अपना विशिष्ट धार्मिक महत्व रखता है। रविवारो और एकादशियो की पूजा तुलसी-पूजा को आधार मानकर ही की जाती है।

कार्तिक मास मे कन्याएँ तथा स्त्रियाँ कार्तिक स्नान भी करती हैं। जिस दिन से स्नान आरम्भ होता है उन्हे व्रत रखना पडता है। तारो-भरी रात म वे किसी सरोवर अथवा सरिता मे जाकर स्नान करती है। स्नान करने के पश्चात् ये पुनः लौटती हैं। लौटते समय मार्ग मे किसी स्थान पर ये विश्राम करती है। अपने साथ छोटे से कलश मे ये जो जल भरकर लाती हैं उससे तुलसी के बिरवा को स्नान कराती हैं। मार्ग मे ये तुलसी-पूजन से सम्बन्धित गीत गाती हैं। ये तुलसी को रोली, चदन तथा पुष्प चढाती हैं तथा अन्त मे शालिग्राम की पूजा करती हैं। सन्ध्या समय फिर स्त्रियाँ तथा बालिकाएँ तुलसी के गमले के चारो ओर बैठ जाती हैं। तुलसी के गमले पर दीप जलाया जाता है। घूमर नृत्य के साथ उनके पाँव गीत की स्वर-लहरियो की लय पर थिरकने लगते हैं। अन्त मे तुलसी मैया को शयन करा वे स्वय विश्राम करती हैं।

कन्याएँ तुलसी-पूजन केवल इस ध्येय को लेकर करती हैं कि जैसे तुलसी ने

आराधना करके शालिग्राम जैसा पति प्राप्त किया, वैसा ही सुन्दर शील गुणो से युक्त पति उन्हे भी प्राप्त हो। इस भाव की अभिव्यक्ति निम्न पक्तियो मे देखिए—

सहेल्याँ से बूझे ए म्हाँ री सहेली।
के गुण पायो भरतार।
च्यार बज्या मैं सोती उठती।
गीता रो करती पाठ जी सहेली।।
थारे तो खातिर कातिक न्हाया,
इतना तो मैं जप तप करती।
जद पायो भारतार सहेली।।[1]

सहेलियाँ अपनी विवाहित सखी से पूछती हैं कि—हे सखि! किन गुणो के कारण तुमने यह सुन्दर वर प्राप्त किया? उत्तर—चार बजे मैं सोकर उठ बैठती और गीता का पाठ करती। इतने जप-तप करने पर ऐसा प्रियतम मुझे प्राप्त हुआ है।

एक अन्य गीत मे बालिका तुलसी माता से योग्य वर देने के हेतु प्रार्थना कर रही है—

हाथ जोड तुलसी करूँ वीनती।
होजी वीरे लुल-लुल लागूं पाँव।।
होजी वीरा दूध पखालूं पाँव।
होजी वीरे ओढ़ण दिखणी चीर।।[2]

मैं तुलसी से हाथ जोडकर विनती करती हूँ तथा उसके झुक-झुककर पाँव स्पर्श करती हूँ। हे देवी! तुम्हारे चरणो का मैं दूध से प्रक्षालन करूँगी और तुम्हारे लिए मैं दक्षिणी चीर ओढने के लिए मँगवाऊँगी। यही नही, वह तुलसी के पति शालिग्राम की भी पूजा करेगी—

चाँद चढयो गिरनार सूरज किरत्याँ ढल रियो।
महलाँ बैठी मोती पोती रात भर जागी रे।।
उठ परभात तडके पूजा ने जासी।
तुलसाँ रा केसरिया बिसन सालिग्राम री।।

चन्द्रमा आकाश मे चढ़ आया है तथा सूर्य की कृतिकाएँ ढलनी आरम्भ हो

---

1 राजस्थानी लोकगीत—डा० गगाप्रसाद कमठान, पृ० 70
2 वही, पृ० 70

गई हूँ। मैं रात्रि जागरण कर महलो मे बैठी हुई मोती पिरोती रहती हूँ। कार्तिक पूर्णिमा का चन्द्रमा उदित हुआ है, इनते तारो भरी रात्रि मे मैं जागती रही, परन्तु मैं प्रभात मे तडके (शीघ्र) ही उठकर तुलसी के शालिग्राम की पूजा हेतु निकल पडी। वह अपनी माँ से भी कहती है—हे माँ ! कार्तिक पूर्णिमा आई है। मैं भाइयो की प्रिय बहिन तारो-भरी रात मे जागती रही हूँ।

आई आई माँ कातिक री पूरनमासी।
तारो री राताँ जागँ वीराँ री वैनड ।।

इन पक्तियो मे बहिन ने भाई के प्रेम का सकेत दिया है। कन्या तुलसी को निरन्तर पूजन का विश्वास दिलाती हुई कहती है कि—

तुलसी दी पीवरिये रे माँय थरपूँ देवलो।
आवतो जावती ने मूँ थाँने धोक्स्यूँ ।।

हे तुलसी माता ! मैं अपने पीहर मे तुम्हारे मन्दिर की स्थापना करूँगी और आते-जाते तुम्हे धोक दूँगी।

धन बाई तुलछाँ, धन थारो नाम।
धन बाई तुलछाँ, उत्तम काम।।
वनमाली रे पुत्तर जायो।
जिण तुलछाँ रो वन रोपायो ।।[1]

तुलसी, तेरा नाम धन्य है। तू उत्तम कामनाओ का सफल करने वाली है। तुलसी के वरदान से माली के पुत्र हुआ। उसने प्रसन्न होकर तुलसी का वन लगवाया। यही नही उसे प्रेम-भक्ति से सीचा। सावन मे तुलसी अकुरित हुई, भादो मे उसमे दो नन्ही-नन्ही पत्तियाँ आईं, आश्विन मे पौधा कुछ बढकर लहराने लगा। कार्तिक मे तुलसी का श्री शालिग्राम से विवाह हुआ। मार्गशीर्ष मे यह दाम्पत्य प्रेम प्रौढता को प्राप्त हुआ और तुलसी के पुष्पो की सुगन्ध भगवान शालिग्राम लेने लगे। अन्त म साधिका की कामना देखिए—

तुलछाँ ए, थारो धरियो ध्यान।
अन्त समँ मे दे-दे पान।।

हे तुलसी ! हम तुम्हारा ध्यान करती हैं। तू इतनी दया हम पर करना कि अन्त समय हमारे मुँह मे तुलसी दल पडे, जिससे हमारी सद्गति हो जाए।

इस प्रकार इस गीत मे तुलसी के विकास-क्रम और जीवन-ध्येय मे स्त्रियो के

---

1 राजस्थान के लोकगीत—स० ठाकुर रामसिंह आदि, पृ० 29

जीवनोद्देश्य को बिम्ब रूप से सन्निहित किया गया है।[1]

एक अन्य गीत में तुलसी के विवाह की कल्पना की गई है। कल्पना अति सुन्दर है—तुलसी अपनी सहेलियों के साथ में यमुना से पानी भरने के लिए गई है। सखियों ने तुलसी को व्यग्य में कहा कि तुम इतनी बड़ी होकर भी कुमारी ही हो। सहेलियों के इस व्यग्य ने तुलसी को व्यथित कर दिया और वह रोती हुई घर पहुँची। वह रोती हुई पिता की गोद में जा बैठी। पिता पूछने लगे—

के, बाई जमना को नीर दुहेलो।
के, बाई, जमना को पाणी थोड़ो, हो राम।
भरण गई जल जमना को पाणी।[2]

बेटी, क्या यमुना का जल लाते हुए कोई कष्ट उठाना पड़ा अथवा नदी में जल की कमी हो गई ? इस पर तुलसी ने सहेलियों के व्यग्य की बात कह सुनाई। पिता को तुलसी के विवाह की चिन्ता हुई। उन्होंने वर के सम्बन्ध में तुलसी से ही पूछा—

के, बाई, थाँ ने चाँदो वर हेरां।
के, सूरज वर हेरां, हो राम ॥ भरण गई···

तुझे चन्द्रमा जैसा सुकुमार वर रुचेगा अथवा सूर्य जैसा प्रखर तेजस्वी ? तुलसी को दोनों ही नहीं रुचे। चन्द्रमा की ज्योति अस्थिर है, उसकी कलाएँ क्षीण होती हैं, सूरज अंशुमाली है, उसकी किरणों का उग्र ताप कौन सहे ? फिर पिता ने पूछा—

के बाई थाँने ईसर वर हेरां।
तो के कानू वर हेरां, हो राम ॥ भरण गई···

कि क्या तुम्हारे लिए शंकर-सा अवधूत वर ढूँढ़ूँ अथवा कृष्ण-सा रसिक वर। तो तुलसी ने उत्तर दिया—

ईसर तो बाबाजी सोलै दिन आवे।
कानू तो रवे कँवारो, हो राम ॥ भरण गई···

ये भी उसे स्वीकार नहीं। ईश्वर तो केवल 16 दिन के लिए ससुराल आते हैं और कन्हैया तो अखण्ड कुमार ही रहते हैं। तो फिर कैसा वर ढूंढा जाय ? तुलसी ने उत्तर दिया—

---

1 राजस्थान के लोकगीत—सं० ठाकुर रामसिंह आदि, पृ० 30
2 वही, पृ० 30

ना बाबाजी, ईसर वर हेरो।
ना वानू वर हेरो, हो राम॥
पण आप किसन वर हेरा हो राम।
भरण गई जल जमना को पाणी॥

तुलसी और शालिग्राम का विवाह स्थापित हो गया। मंडप तैयार होने लगा। हरे बाँसो के थभो के बीच मे स्वर्ण-मंडित वेदी बनाई गई। भाँवरें पड़ने लगी।

पहलो फेरो लियो बाई तुलछाँ।
बाबोजी ने भोत पियारी हो राम॥ भरण गई···

पहली भाँवर पड़ने पर पिता के आनन्द का पारावार न रहा, दूसरी मे भाई तथा तीसरी मे मामा का हृदय उल्लसित होने लगा। चौथी भाँवर मे तो स्वयं शालिग्राम का प्रेम-स्रोत रोके न रुक सका और तुलसी उनके प्रेमाधीन हो गई।

यद्यपि पौराणिक मत से कृष्ण कन्हैया और शालिग्राम के व्यक्तित्व मे कोई भेद न होते हुए भी यहाँ गुणो की ध्वनि के आधार पर नामो में भेद किया है।

गीत मे प्रश्नोत्तर शैली का सुन्दर प्रयोग हुआ है। पिता ने प्रश्न पूछे हैं तथा पुत्री ने उत्तर दिए हैं।

गीत में 'हो राम भरण गई जल जमना को पाणी' की प्रत्येक पद के बाद आवृत्ति हुई है। यह पवित्र गीत की टेक है।

यहाँ पिता कन्या से वर निश्चित करने मे सलाह लेता है। यह प्रथा आज समाज मे नही पाई जाती है। इस सम्बन्ध मे माता-पिता का निश्चय ही सर्वोपरि माना जाता है। किन्तु इस गीत से हम यह सहज ही अनुमान लगा सकते है कि पौराणिक काल में यह प्रथा रही हो कि पुत्री के द्वारा निश्चित वर से पिता उसका विवाह सम्पन्न करता रहा हो। कालान्तर मे यह प्रथा लुप्त हो गई होगी।

वैवाहिक रूढ़ि के अनुसार प्रथम भाँवर तक पिता का, द्वितीय तक भाई का, तृतीय तक मामा का अधिकार कन्या पर रहता है। ज्यो-ज्यो भाँवरें पड़ती है, क्रमशः पिता, भाई और मामा अपने-अपने अधिकार एव उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाते हैं और यही कारण है कि उनको इस समय प्रसन्नता होती है। कण्व ऋषि भी शकुन्तला को दुष्यन्त से विवाहित समझकर प्रसन्न हुए थे, क्योकि कन्या पराया धन होती है—अर्थो हि कन्या परकीय एव। (अभिज्ञान शाकुन्तलम्) चौथी भाँवर में कन्या पति के अधिकार मे चली जाती है।

उपसंहार

विगत पृष्ठों मे राजस्थान के आठ त्योहारों के अवसर पर जनता के कंठ-स्वर से निःसृत लोकगीतों का विविध दृष्टियों से अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। हमने देखा है कि सहज ढंग से, नैसर्गिक रूप से हृदय के भाव जब वाणी के रूप में फूट पड़ते हैं तब उनमें कितनी मार्मिकता और अपील का समन्वय हो जाता है। उनमें जो सुन्दरता होती है वह प्रयत्न-साध्य नहीं होती है, उनमें सहज शोभा होती है आहार्य शोभा नहीं। इनमें स्वाभावोक्ति और रसोक्ति का विलास है। वक्रोक्ति का चमत्कार नहीं होता। इनमें लोककवि (अर्थात् जिसका कवि ही लोक है) की शक्ति का परिचय मिलता है व्यक्ति के अभ्यास का नहीं। और यही कारण है कि उनके द्वारा प्रकटित भाव एक क्षण के लिए शिष्ट समुदाय के लिए भले ही अग्राह्य मालूम पड़े लेकिन फिर भी इनके द्वारा हृदय मे स्फूर्ति का सचार होता है। बालक अपनी तुतली वाणी मे यदि हमें गाली भी देता है कुवाच्य भी कहता है, तो हमारे हृदय में उसका मलाल नहीं रह जाता, क्षोभ नहीं उत्पन्न होती और प्रतिहिंसा की भावना जागृत नहीं होती, क्योंकि वह तो गाली नहीं कुवाच्य नहीं, वह तो बालक की आत्माभिव्यक्ति का ही साधन है। वह अपने को अपने आन्तरिक व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करना चाह रहा है और उसकी अभिव्यक्ति ने इसको ही सर्व सुगम और सर्व सुलभ मार्ग समझा है। बिहारी जब विरह का वर्णन आलंकारिक ढंग से करते हैं या संभोग शृंगार का वर्णन करते हैं तो आलोचक कान खड़े कर उनकी ओर संदेह की दृष्टि से देखता है और उनकी भर्त्सना भी करता है। परन्तु लोकगीतों पर विचार करते हुए पाठक की आलोचनात्मक बुद्धि सो जाती है, इसमें कुछ ऐसा जादू है कि उसे कुलबुलाने का अवसर ही नहीं रहता। वास्तव में देखा जाए तो काव्य के लिए यही सबसे बड़ी कसौटी है।

काव्य की सफलता के लिए यह कोई जरूरी नहीं है कि उसमें कोई त्रुटि न हो और वह काव्यशास्त्र के नियमों की तुला पर बावन तोले पाव रत्ती सही ही उतरे। यह भी सम्भव है कि काव्यशास्त्र के नियमों का पालन करने वाला काव्यशक्ति-हीन हो, निर्बल हो और हृदय पर प्रभाव डालने वाला न हो। इसकी ओर ऐसा भी काव्य हो सकता है जिसमें काव्यशास्त्र की दृष्टि से बड़ी-बड़ी भूलें हों। न तो

छन्दो के अनुबन्ध का पालन किया गया हो, न तो भाषा ही परिमार्जित हो। न तो अलकारो के सुव्यवस्थित प्रयोग की ओर ध्यान दिया गया हो। पर फिर भी उसम कुछ ऐसी दिव्य चीज हो कि वह पाठक को सराबोर कर ल, जिसे पाकर पाठक कवि का इतना कृतज्ञ हो जाए कि उससे और कुछ भी माँग करने की इच्छा ही न रह जाए। सच्ची बात तो यह है कि किसी कविता को पढकर या कहानी के अन्त मे आने पर जिस अश मे पाठक के हृदय मे यह जानने की उत्सुकता रह जाती है कि इसकी शैली कैसी है, इसका अलकार विधान कैसा है, मात्राएँ ठीक है या नही, उसी अश मे वह रचना असफल कही जा सकती है। साहित्य के ग्रन्थो मे से ऐस अनेक ग्रन्थो का उदाहरण दिया जा सकता है जिससे यह प्रमाणित हो कि रचना सब त्रुटियो के रहते हुए भी महान् है और सब नियमो का अनुवर्तित्व करने पर भी वह आदरणीय नही हो सकी है। एक बडे प्रसिद्ध उपन्यासकार है जिनका नाम विला कैथर है। उनका एक उपन्यास है एलेक्जेंडर्स ब्रिज वह बहुत ही नियमानुसार सुसगठित (फाइनली कन्सट्रक्टेड) है। उसी लेखक का एक दूसरा उपन्यास है दी सोंग आफ द लार्क, जिसम ऐसी बहुत सी घटनाओ की भरमार है जो उपन्यास मे अच्छी तरह सगत नही होती पर फिर भी आलोचको का कहना है कि इन औपचारिक त्रुटियो के बावजूद भी यह एलक्जेंडर्स ब्रिज स अधिक समृद्ध तथा सन्तोषप्रद उपन्यास है।[1]

इसी तरह हम कह सकते है कि लोकगीत इस बात के जीते-जागते प्रमाण हैं कि साहित्य की रचना की महानता लेखक के हृदय की स्वच्छदता, उदारता, निश्छलता पर निर्भर करती है। परिश्रम-साध्यता तो रचना की दीप्ति को मलिन ही करती है और यदि रचना प्रयत्न-साध्यता के बावजूद भी कुछ सजीव मालूम पडती है तो वह उसके बावजूद ही है उसके कारण नही। इस तरह लोकगीत जिसे हम लिखित साहित्य नही मौखिक साहित्य, जन कठाग्रवर्ती साहित्य कह सकते हैं सच्चे अर्थों म साहित्य है। यो भी देखा जाए तो साहित्य के व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ दो होते हैं महस्य भावम् साहित्यम् अथवा सहितस्य भावम् साहित्यम्। दोनो मे से जो भी हम अर्थ लें एक ही बात निकलती है अर्थात् साहित्य वह है जो हमारे अन्दर एकत्व अथवा सहयोग के भाव को जागृत करे। विश्व के पृथक् पृथक् जीवो मे जो एकता का सूत्र है और जिसके द्वारा यह सारा विश्व आबद्ध है उसको जागृत करे और हममे यह भावना उत्पन्न करे कि हम सब एक हैं। मेघ आकाश म रहता है, हम पृथ्वी पर, मेघ धूम ज्योति सलिल और मरुत का सन्निपात है, जड है, उसमे हमारा क्या सम्बन्ध। पर जब हम कालिदास का मेघदूत पढते हैं तो

1. लिटरेरी एसेज बाई डेविड डेची (पृ० 182)
क्रिटिसिज्म आफ फिक्शन।

उसके साथ ही हमारे भाई-चारे का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। ऐसा लगता है कि एक ही तार है जिससे हम दोनो छिदे हुए हैं। कालिदास का साहित्य लिखित साहित्य है, उसमें काव्य के नियमों का पालन सचेष्ट रूप मे किया गया है। यदि वह हमारे हृदय मे इस तरह का व्यापकत्व उत्पन्न कर सकता है तो हमे कहने दीजिए कि स्वाभाविक रूप से निकले हुए हमारे ये त्योहार गीत इस कार्य में अधिक सफल होते हैं। जिस समय लोकगीत की कोई नारी किसी पक्षी के द्वारा अपने प्रिय के पास सन्देश भेजती है, पशु-पक्षियों को भाई कहकर सबोधित करती है, तो उस समय हमारे हृदय का काठिन्य गलकर पानी-पानी हो जाता है और जिस समय ननद-भौजाई को, बहिन-भाई को, पत्नी-पति को भाव भरे हृदय म पुकारती है उस समय तो कहना ही क्या है? मनुष्य की यह अहम्मन्यता और काठिन्य दूर हो जाने से वह अपने अन्दर एक विचित्र तरलता और आर्द्रता का अनुभव करता है और सारा विश्व स्नेह स ही सिक्त मालूम पडता है। या तो वही इतना बडा हो जाता है कि वह सारे विश्व को अपने अन्दर समेट लेता है या विश्व ही दुबक-कर उसके व्यक्तित्व की सीमा मे आ जाता है।

साहित्य शास्त्र मे लक्षणा, व्यजना इत्यादि शब्द-शक्तियो की बहुत महिमा गाई गई है, साथ ही अलकारो को भी पूरा महत्त्व दिया गया है। कुछ लोगो ने तो वक्रोक्ति को काव्य का जीवन ही कह दिया है। यह सब बातें लोकगीतो मे मिलती हैं। हाडी का हमीर, गुलाब की छडी, मिसरी की डली, मोतियाँ बिचली लाल, ऐसे-ऐसे लाक्षणिक प्रयोग बहुतायत से मिल जाएँगे। ध्वनि विशेषत वस्तु से वस्तु की ध्वनि वाले उदाहरण यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरे हुए प्राप्त होगे। प्रसगा-नुसार कहीं-कहीं इस निबन्ध मे इसका उल्लेख भी किया गया है। किसी नारी के लिए सुहाग सबसे प्यारी वस्तु है। भगवान् से वह प्रार्थना करती है कि उसका सुहाग अचल रहे, वह कभी मिटने नही पाए। परन्तु जब वह गौरी से प्रार्थना करती है तो वह यह बात सीधे ढग स नहीं कहती है।

"कजल्यो बहनोई मांगा सदा सुहागन बहनां।" वह सुन्दर बहनोई मांगती है तथा सुहागिन बहिनें मांगती हैं। मतलब यह कि वह भी सुहागिन बनी रहे। यदि वह सुहागिन नही रहती है तो सब बहनें सदा सुहागिन कैसे कही जा सकती हैं। यहाँ पर व्यजना का तथा ध्वनि का चमत्कार विशेष रूप से द्रष्टव्य है। हाँ, वस्तु से अलकार ध्वनि या अलकार से अलकार ध्वनि अथवा अलकार से वस्तु ध्वनि जो शास्त्रबद्ध साहित्य में बहुतायत से पाई जाती है और जिसकी योजना करना शायद कवित्व का उत्कर्ष भी समझा जाता है, उसके उदाहरण इन लोकगीतों मे विरल हैं। इसका कारण यही है कि लोकगीतों की प्रेरणा भावो के स्वच्छद आवेग मे है। इसके लिए प्रेरणा कहीं बाहर से जैसे कवियश, राजसरक्षण, या वाक्-सिद्धि से प्राप्त नहीं होती। अलकारों में भी साम्य मूलक अलकार, जैसे उपमा व रूपक तो

प्रचुर परिमाण मे मिल जाएँगे। साग रूपक तो कही-कही ऐसे मिलते हैं जिसके सामने प्रसिद्ध कवियो की साग रूपक योजना भी फीकी मालूम होती है। एक नायिका एक अवसर पर कहती है कि हमारी ननद ही दीपक की लौ है और हमारे ननदोई की बाते ही स्नेह हैं जिसके सहारे लौ रात भर जलती रहती है। यह रूपक छोटा है परन्तु बहुत अभिव्यजक है। इसमे जान-बूझकर खीचा-तानी नही की गई है। तुलना कीजिए उत्तर काण्ड मे तुलसी के ज्ञान-दीपक वाली साग रूपक योजना से जिसमे रूपक को इतना खीचा गया है कि कवि का हाथ स्पष्ट दिखाई पडता है और वह रसास्वादन मे बाधा उपस्थित करता है। परन्तु यहाँ पर उक्ति इतनी सीधी है कि किसी तरह की बनावट का पता नही चलता। पता कैसे चले वहाँ बनावट हो भी? वह तो हृदय के उस केन्द्र से निकला है जहाँ पर सारा विश्व आकर केन्द्रित हो जाता है। और जहाँ व्यक्ति हृदय लोक हृदय से मिलकर मुक्त दशा को प्राप्त होता है। शुक्लजी ने इसी को हृदय की मुक्तावस्था कहा है और इसी मुक्तावस्था मे लोकगीतो की सृष्टि होती है। हाँ, लोकगीतो मे वैषम्य मूलक अलकारो (विशेषोक्ति, विभावना, असगति, विरोधाभास) का दर्शन नही सा है, कारण ये तो बात की करामात प्रदर्शन के लिए ही अधिक उपयुक्त हैं। अब विशेष कुछ कहना नही है, सीमित समय और स्थान के अन्दर कुछ कहा भी नही जा सकता।

परन्तु एक कल्पना मेरे मन मे जागती है—हिन्दी का भक्तिकाल—हिन्दी साहित्य का स्वर्णमय युग कहा जाता है। यह स्वर्णमय युग हिन्दी साहित्य के इतिहास मे अचानक कैसे उपस्थित हो गया इस समस्या ने बहुत से इतिहास-लेखको को भ्रम मे डाल रखा है और उन्होने इसके कारण ढूंढते हुए न जाने कितनी तरह के अनुमान भिडाए। किसी ने इसे ईसाइयत की देन समझा। किसी ने इसे हिन्दुओ की निराशाजन्य मनोवृत्ति का परिणाम समझा। परन्तु आधुनिक शोध ने इसे भ्रामक प्रमाणित किया है और कहा है कि इस अपूर्व भक्ति साहित्य की उत्पत्ति का कारण उस काल की लोक-प्रवृत्ति का शास्त्रसिद्ध आचार्यो और पौराणिक ठोस कल्पनाओ से युक्त हो जाना है।[1] कहने का तात्पर्य यह है कि भक्ति साहित्य इसलिए इतना दिव्य तथा प्रभावशाली बन सका कि इस अवसर पर आकर शास्त्रसिद्ध आचार्यो ने झुककर जनसाधारण का हाथ पकडा और जन-साधारण ने जरा ऊपर उठकर उस हाथ को ग्रहण किया और इस तरह शास्त्र एव लोकविश्वास दोनो पारस्परिक सहयोग से एक नये साहित्य-लोक की सृष्टि कर सके जिसकी आभा आज भी ज्यो की त्यो चमक रही है, बल्कि उसकी चमक मे वृद्धि ही होती जाती है।

---

1 हिन्दी साहित्य—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० 89

आज लोकसाहित्य तथा लोकगीतों का अध्ययन पर्याप्त मात्रा में हो रहा है। भारत के अनेक प्रदेशों के लोकगीत तथा लोकसाहित्य का अध्ययन उत्साही शोधकों ने भिन्न भिन्न ढंग से किया है और कर रहे हैं और उनके विविध पहलुओं को सामने ला रहे हैं। दूसरी ओर शास्त्र परिपाटी विहित साहित्य का अध्ययन तथा सृजन भी जोरों पर है और उसमें तरह-तरह के प्रयोग भी किए जा रहे हैं। हमारी कल्पना है कि साहित्य में अथवा काव्य में यथार्थवाद, ईमानदारी, स्वाभाविकता के नाम पर जो कुछ लिखा जा रहा है उसका आंतरिक अर्थ यह है कि वह जनसाधारण से मिलने के लिए मैत्री का हाथ बढ़ा रहा है और लोकसाहित्य का जो अध्ययन हो रहा है उसके द्वारा जनसाधारण जरा ऊपर उठकर मैत्री के लिए प्रसारित भुजा को पकड़ने की चेष्टा कर रहा है। जब इन दोनों का वास्तविक सम्मेलन होगा उसी समय हिन्दी में फिर से तुलसी, सूर तथा रवीन्द्र जन्म लेंगे और उनका साहित्य प्राचीनकाल के किसी भी साहित्य से दिव्यतर, उच्चतर और ज्योतिर्मय होगा।

परिशिष्ट

होली के गीत

नीलडी सँणगार म्हारो दादो जी आयो ।
दादाजी म्हाने छोड मत जाइयो, होली आइयो ।।
फागण लागो नीलडी सँणगार वीरो जी आयो ।
वीरा जी म्हाने छोड मत जाइयो होली आइयो ।।
नीलडी सँणगार म्हारो काकोजी आयो ।
काका जी म्हाने छोड मत जाइयो, होली आइयो ।।

(2)

होली आडा है दन च्यार होली पावणी रे लाल ।
म्हारी होली के ओल्यू दोल्यू गोऊँ रे चणा ।।
म्हारी होली के गज गज केस बीरा रे चालो पावणा ।
बीरो कहे बाई ने चुंदडली ओढाई दूं ।
भावज कहे बाई ने फाटोडी दूल ।।
बीरो कहे बाई ने ठेठ पहुँचाई दूं ।
भावजा कहे बाई ने आदेटे पहुँचाई दा ।।

(3)

कस्यो बीरो धोवे ए धोवनियाँ ।
कस्यो बीरो करे ए सँणगार ।।
होली थारे कारणे ।
ओ तो पढियो ए परदेशाँ ।

(4)

थो कुण बीरो छोगा राले ।
थो कुण बीरो बणियाँ गैर नाचे । होली थारे कारणे ।
अण गैरियाँ में हगला ही नाचे ।
...[1] बीरो छोगा राले ।
ए होली थारे कारणे ॥[2]

(5)

दोय-दोय बणिया ले भँवरजी गैर नाचबा चाल्या ।
घरां थारी परणियोड़ी ओलम्बिया झाड़े रे ।
धीरे नाच ।
हाबणियाँ डबराय राले रे धीरे नाच ।
दाय-दोय छोगा रान भँवरजी गैर नाचबा चाल्या ।
घरां थारी परणियोड़ी ओलम्बिया झाड़े रे । धीरे नाच ।

(6)

कड़ियाँ रे कूँची बाँध मूँ तो गैर देखबा चाली ।
एड़ी के ठमोरे म्हारी कूँची गमगी रे कूँची हेरण दे ।।
म्हारी सासू नणद के छाने आई रे कूँचो हेरण दे ।
कड़ियाँ रे कूँची बाँध मूँ तो गैर देखबा आई रे ।।
यागे मारो परणियोड़ो तरवरियो नाचे रे ।
मूँ तो पाछी फरगी रे लाज्याँ मरगी रे पाछी फरगी रे ।।

(7)

सापीड़ा फागण बोले रे मोनो फागण रो ।
औरों तो दनो थारी दाय पड़े तो आज्ये रे ।।

---

1 विभिन्न भाइयों का नाम लिया जाता है और गीत चलाया जाता है ।
2. राष्ट्रवाणी (साप्ताहिक) लेखक के लेख से उद्धृत ।

होली आला मीना में जरूर आज्ये रे।
मीनो फागण रो ॥
सालूडो रँगाई दे भँवरजी थारी दाय पडे तो आज्ये रे।
होली आला मीना मे जरूर आज्ये रे। मीनो फागण रो ।।
थूं क्वे लो मारुणी थारे झालरो गडाऊँ।
आई रे होली आई वीदणी वणाई देस्यूं रे।
थारी सायणियो में खेलण मतजाइ कियो मानजा।
क्वे तो भँवरजी थाने रूमालियो रँगाई दूं।।
आई रे होली आई वीद वणाई दूस्यूं रे।
थारा साथिडो म खेलण मत जावो भवर जी ।।
कियो मान जा ।।[1]

(8)

पाटियाँ पाणत करतां छोरी ए गाँवो ढोल वागो।
भीगा रा गोऊँडो[2] मे रोला राल्या डाको धीरे दे ।।
भगावण वाला जीवतो रीज्ये रे डाको धीरे दे।
भगावण वाला थारे वाणी छोरी वेज्यो रे डाको धीरे दे ।।[3]

(9)

उभी रहिए होली माता थारे झालरो गडाऊँ।
झालरिया ने काँई करूँ मारे डोकरियो तो डग-डग हाले ।।
रावोडी कूण बाँधे।
बाँधे थारा भाई भतीजा मोटे घर परणाई।
मोटा घरां रा तकडिया तोला सेर सोनो तोले ।।
आधी को तो चेल गडाई आधी का मादलिया।
सादी वे तो देई रे वीरा मूं थारी भुजा वाई ।।[4]

1. उपर्युक्त गीत-संख्या 5, 6, 7 लेखक के गोतम सखा (मासिक) मे प्रकाशित लेख से उद्धृत।
2. इस शब्द के स्थान पर जो, वर्णों, शब्द आते हैं और पंक्तियाँ फिर गाई जाती हैं।
3. संगृहीत
4. संगृहीत

(10)

फागण आयो रसिया फागणियो रँगाई द्यो ।
पीलिया म मच री होली, फागणियो रँगाई द्यो ॥
चाँदा तो थाँरे चानणे ओ रसिया ।
पणियाँ गई तलाव जी रसिया ।
होली खेल रसिया फागण आयो ?
राजी-राजी बोल बाई फागणियो रँगाई द्यूँ ॥
राखूँ म्हारी धण ने जीव री जडी ।
गुलाब की छडी, मिसरी री डली ॥
मूँ म्हारी माँ बी री लाडली जी रसिया ।
मोरयाँ बचली लाल जी रसिया ॥
राजण आज न्याव रसिया फागण आयो ।
फागणियो रँगाद्यो रसिया फागण आयो ॥

(11)

कुण मारी पिचकारी···
म्हारा मुखडा पर कुण मारी पिचकारी ।
चढता जोबन म कुण मारी पिचकारी ॥
माथा ने मैंमद, अधक बराजै ।
तो रखडी री छबि न्यारी जी ॥
बाई सा रा बीरा, सासू जी रा जाया ।
तो साजन मारी पिचकारी ॥
गोरी रा मुखड़ा पर कुण मारी पिचकारी ॥[1]

(12)

लाल केश्या थारे म्हारे कदरी प्रीत रे, लाल केश्या !
पाणीडे रे जाती री पल्लो खोंचियो !

---

1 गीत-सं० 10 व 11 राजस्थानी लोकगीत भाग 1, सम्पादक गंगाप्रसाद कमठान, पृ० सं० 78, 82 से

लाल केश्या आधी रो बुलायो रे मोडो आयो रे, लाल केश्या,
पछे दीधो हाऊजी पीसणो ॥ लाल० ॥[1]

(13)

रसिया फागण आयो ।
चार खूंट चोतरो हो रसिया ॥
जिस पै कातूं सूत ।
तो सासू माँगे कूकडी ॥
तो साजन मांगे रूप ॥ रसिया० ॥

दन मे देऊँनी कूकडी हो रसिया ।
रातयूं देऊँली रूप हो रसिया ॥
चार घरी रो बेवडो हो रसिया ।
तो मधरी चालूं चाल ॥
सासू जी नरख वेवडो हो रसिया ।
नै साजन नरखे चाल ॥ हो रसिया० ॥

सूरज थाने पूजती हो,
भर-भर मोत्यां थाल ॥ हो रसिया० ॥

उन्योंच मोडा तो ऊज्यो ॥ हो० रसिया० ॥

म्हारा भँवर चढे दरबार ।
रसिया फागण आयो ॥[2]

(14)

म्हारे वीरैजी मँडायो घण बाजणो ।
म्हारे रेगर मँड सायो जी ।

---

1 राजस्थानी लोकगीत—पुरुषोत्तमदास मेनारिया, पृ० 47
2 वही, पृ० 46

रगीलो चग वाजणो ।
म्हारो बीरोजी बजावे चग बाजणो ।।
म्हारो बीरोजी बजावे चग,
म्हारां साथिड़ा गावै धमाल ए ।
रगीलो चग वाजणो ।।
चग आंगलियो वाजे
चग मूंदड़ियो वाजे ।।
चग पूणचां रे बल वाजे ।
ए रंगीलो चग वाजणो ।।
चग बीकाणै वाजे ।
चग जोधणे बाजे ।
वाजै-वाजै चग अजमेर ए ।
रगीलो चग वाजणो ।।[1]

(•15)

होली थारो लाम्बो टीको, लाम्बी उण री डोरी ए ।
डोर हिलावे (··)[2] बीरो ज्यांरी लाडी गौरी ए ।।
गौरी है तो दही बिलोसी, कँवर गया है होली ए ।
कँवरां ने तो पेचो बँधास्या, कँवराणियां ने साडी ए ।।
बीरा डागले चढ देखूं रेक, जो कोई आवे लेण ने ।
बीरा लाल दूमालोरेक (······)[3] आवे लेण ने ।।
बीरा हारयो है तो बैठी रेक ठंडी छाया खजूर की ।
बीरा भूखो है तो जीमीरेक, रतन कचोले चूरमो ।।
बीरा तीसयो है तो पीइरेक, कोरा माट कुम्हार को ।
बीरा बेगो-वेगो जीमीरेक, सासू नणद बलोकडी ।
बीरा तने देसी गाल्यां रे, मनै देसी ओलमां ।।

1. परम्परा—लोकगीत विशेषांक, परिशिष्ट, पृ॰ 191
2-3. बिन्दुओं के स्थान पर भाई का नामोच्चारण किया जाता है ।

(16)

ओ म्हारा चाँद सूरज नणदोई सा,
म्हूँ तो पाग गेल बा आई सा।
म्हूँ तो बाई सा ने सारै लाई सा,
ओ म्हारा चाँद सूरज नणदोई सा ।।
ओ म्हारा सूरज किरण नणदोई सा,
म्हारा माथा ने मैंमद लाओ सा।
म्हारी रखड़ी रतन जड़ाओ सा,
म्हारी हिवड़ा ने हाँस मँगाओ सा ।।
ओ म्हारा चाँद सूरज नणदोई सा,
म्हारी बायाँ ने बाजू लाओ सा।
म्हारे मुखले चूँप दिराओ सा,
ओ म्हारा चाँद सूरज नणदोई सा ।।

(17)

काट्यो तो काट्यो डाडो कैर को जी,
काट्यो छै होली ताण थाम।
ओव बरसै बर सोदण होली पांवणी जे,
काटण वालो म्हारो समरथ वीर।
ओव बरसै बरसोदण होली पांवणी जे ।।[1]

(18)

उण मिल ले भरत भैया, हर आए किसन आए।
भुजा रे पसार मिले दोनो भैया, आखो मे नीर ढलक आयो है ।।
कैसी-कैसी मुसीबत भुगत आए, पान बिछाया पान ओढाया ।।
भूख लगी जद वन फल खाया ।।

1. उपर्युक्त गीत संख्या 15, 16 व 17 राजस्थानी लोकगीत—सं० यशप्रसाद कमठान से उद्धृत।

(19)

लिछमण के बाण लग्यो सगती ।
जो कोई ऐसो होवे लिछमण को जियावे ।
आधा-आधा राज सवाई धरती,
के तो जिवावे सीता सतवन्ती,
कै जिवावे हड़मान जती ।
काहे से जिवावे सीता सतवती ?
काहे से जिवावे हड़मान जती ?
सत से जिवावे सीता सतवंती ?
बूटी से जिवावे हणमान जती ।।[1]

(20)

थूँ तो काँई, म्हारी होली माता, गरभ री थूँ तो देख गैंवरियाँ रो डालो रे ।
डाल्या ढलकर चाल्यो ढेलणी, मोल्या मलकर चालें मोरड़ी ।।
थारी होली गैंवरिया मगलाय जासी, थारी डालो रहसी निरालो रे ।
रे डाल्या ढलकर चालो ढेलणी, मोल्या मलकर चाले मोरड़ी ।
थू काँई, म्हारा सरवर गरभरयो, थूँ तो देख नीराँ रो डालो रे ।।
थारो नीरपिणहारियो ले जासी, थारो खाली रहसी सरवर रे ।
थूँ तो काँई, म्हारी मायड, गरभ री, थूँ तो देख धीवडल्याँ रो चालो रे ।।
थारी धीव जँवाइडा ले जासी, थारे नैणाँ मे रहसी झुर रो रे ।
थूँ तो काँई, म्हारी मायड, गरभ री, थूँ तो देख पूतडल्याँ रो डालो रे ।
थारा पूत पाडोसी होय जासी, थारे आड़ी देसी भीता रे ।
डाल्या ढलकर चालें ढेलणी, मोल्या मलकर चाले मोरड़ी ।।[2]

(21)

होली आई, ए सहेल्या मिल खेलां लूर । होली आई ए ।।
कोई-कोई ओढ्या ओणी चूनरी कोई-कोई ओढ्याँ दिखणी चीर
होली आई ए ।।

---

1. ये धमालगीत राजस्थान के साथ लगे हुए व्रजप्रदेशीय भाषा से मिश्रित हैं ।
2. ये दोनों गीत—राजस्थानी लोकगीत—डा० रामप्रसाद कमठान से उद्धृत हैं ।

(24)

हरि हरि हरियो ले !
ज्यूं-ज्यूं चम्पा लहरियां ले।
एडियां रा ऐडा-खेडा
कमली गाय-कमली गाय।
बारह जोजन चरतां जाय।
चरतां-चरतां भागो हींग।
हिंगलियो होना रो हींग।
...[1] एतरो रे एतरो।[2]

(25)

होली आइ ए फूलां री झोली, झिरमटियो एक ले।
ओ कुण खेले ए केसरिये बागा झिरमटियो एक ले।।
ओ कुण खेले एक उघाडे डीला झिरमटियो एक ले।
कानूडो खेले ए केसरिए बागा झिरमटियो एक ले।
कानूडो खेले ए उघाडे डीला झिरमटियो एक ले।
वीरा हाथ में सोना रो चिटियो झिरमटियो एक ले।
वीरा गुंझा में घेवरिया लाडू झरमटियो एक ले।
वैरी पागडी में रोक रुपयो झिरमटियो एक ले।[3]

(26)

आछो गोरा हट जा राज भरतपुर को रे।
भरतपुर गढ बांको किलो रे बांको, गोरा हट जा रे।
थूं मत जाणो रे लडे रे बेटो जाट को,
ओ कुंवर लडे रे राजा दशरथ को। गोरा हट जा रे।।

---

1. बिन्दुओं के स्थान पर नवजात शिशुओं का नाम लिया जाता है।
2. उपरोक्त दोनों गीत लेखक के संग्रह से।
3. राजस्थान के लोकगीत—ठाकुर रामसिंह तथा अन्य, पृष्ठ 466

मारे मती ओ राजू ओ रावत भोड़ी गाय थारी ओ।
वठा को निकलियो लेडो वरारो मे आयो ओ।
हाथ में पीतलिया लोटियो लेडो जाडे जावे ओ।
थारी माने जाडू ओ लेडा अवे कठे जावे ओ।
वठा को निकलियो लेडो टाटगढ़ में गीओ ओ।
टाटगढ़ में जायने रपोट बोली ओ, गोलें लेडके।
चार तो चपरासी लायो सोलहा लायो फिरंगी।
वठा को निकलियो लेडो हथायों मायें आयो ओ।
हथायों आई हेलो मारियो बारे आई राजू ओ।
आऊँ हूँ रे गाँव भाँवी।
पाणी गाल कलियाँ चसमिया मेलण दे।
हाथ में हुकलियो राजू हथायाँ माथे आयो ओ।
हथायो में अपूटा बाँदियां ओ गोले लेडके।
न ओ गोले लेडके, ओवरियाँ उतार ताला जाट दीदा ओ। गोलें लेडके।
बैठो-बैठा राजू पिपलाज ने सँवरे ओ।
पीपलाज पार्डा की देवी म्हारा ऊपर आई ओ।
म्हारा ऊपर आवे देवी दोवड चाड चाढूँओ।
नितर थारा मूँडा आगे आप माथो मेलूँ ओ।
म्हारा ऊपर आवे देवी दोवड चाढ चाढूँ ओ।
नाथ ने नारेल चाढूँ माताजी ने थारिरियो।
देवरा से देवी उतरी रमाँ झमाँ करती।
कुती है कन आगे राजू बारे आई देवी ओ।
नीद वणी ने आवे देवी जीव मारो भायाँ मे।
एक रे होकरा के हमचे थारा थाला जोडी तोडू ओ।
दुजोडे होकरिये थारी बेडी तोडू ओ।
अबे परो उठे न राजू रावत ढाल वरसी ढाबे न।
ढाल न वरसी म्हारी बंगला मे रेगी ओ।
टारो निकलियो राजू बगला ऊपर आयो ओ।
बगला ऊपर आय राजू चार तो चपरासी मारिया।
सोलहा मारिया फरगी, नाओ सोलहा मारिया फरगी।
फरगी मार न राजू कोट कुदियो मौझल रात रो॥

(24)

हरि हरि हरियो ले ।
ज्यूँ-ज्यूँ चम्पा लहरियाँ ले ।
एडियाँ रा ऐडा-खेडा
कमलो गाय-कमलो गाय ।
बारह जोजन चरतां जाय ।
चरतां-चरतां भागो होग ।
हिगलियो होना रो होग ।
...[1] एतरो रे एतरो ।[2]

(25)

होली आइ ए फूलां री झोली, झिरमटियो एक ले ।
ओ कुण खेले ए केसरिये वागा झिरमटियो एक ले ।।
ओ कुण खेले एक उघाडे डीला झिरमटियो एक ले ।
कानूडो खेले ए केसरिए बागा झिरमटियो एक ले ।
कानूडो खेले ए उघाडे डीला झिरमटियो एक ले ।
वीरा हाथ मे सोना री चिटियो झिरमटियो एक ले ।
वीरा गूंझा मे घेवरिया लाडू झिरमटियो एक ले ।
वैरी पागडी मे रोक रुपयो झिरमटियो एक ले ।[3]

(26)

आछो गोरा हट जा राज भरतपुर को रे ।
भरतपुर गढ बाँको किलो रे बाँको, गोरा हट जा रे ।
यूँ मत जाणो रे लडे रे बेटो जाट को,
ओ कुंवर लडे रे राजा दशरथ को । गोरा हट जा रे ।।

---

1. बिन्दुओं के स्थान पर नवजात शिशुओं का नाम लिया जाता है ।
2. उपरोक्त दोनों गीत लेखक के संग्रह से ।
3. राजस्थान के लोकगीत—ठाकुर रामसिंह तथा अन्य, पृष्ठ 466

गढ़ रे ऊभा रे म्हारा बावन भैरूँ।
कांगरा ऊभो रे चौसठ जोगणियाँ। गोरा हट जा रे ॥
चक्कर चलावेला म्हारा बावन भैरूँ।
खप्पर भरेली म्हारी चौसठ जोगणियाँ। गोरा हट जा रे ॥[1]

(27)

उड रे म्हारा हरिया मोरिया कठेक रात रेलो रे।
आज म्हारो मोरियो बडला रे डाले रात रेलो रे॥
बडला रा रखवालां ने बलावण दीज्यो रे। मोर मारेलो॥
मोरियो धरती रो राजा रे मोर मारेलो।
उड रे हरिया मोरिया कठेक रात रेलो रे॥
आज म्हारो मोरियो राणी का पीहर म रात रेलो रे।
राणी रा पीहर वालां ने बलावण दीज्यो रे। मोर मारेलो॥
आज म्हारो मोरियो बडला रे डाले रात रेलो रे॥ मोर मारे लो॥[2]

(28)

ए आऊ आलो अनड़ी रे ठाकर,
बठो-बैठो मुंछियां म वल घाले रे
बैठो-बैठो ठाकरां ने बोल भावे ओ मरणां हालरिया
थारे मरणो हालरियो।
आऊ आला अनडी ओ ठाकर थारे।
साल माथे मेडी ओ थारी मौत नैडी ओ,
एक तो नगारो म्हारा भाइपा म बाजै ओ।
दूजोडो नगारो ठेठ बाजे ओ झगडो आदरियो,
भाईपो भावे तो भाया वेगा आज्यो रे, मरणो हालरियो॥
केसर न कसूंबो रग कढावो मे धोलो रे।
राठाडो रा रूमालिया रगाई लिज्योरे, मरणो हालरियो॥
आऊ न लडाई लागी ओ मरणो हालरियो।

1. राजस्थानी लोकगीत स० रानी लक्ष्मीकुमारी चूडावत, पृ० 187
2. लेखक के संग्रह से।

एक तो परवानो म्हारो भाईपा म मेलो रे ।।
दूजोडो परवानो म्हारो जोधाणे मेलो रे।
तीजडो परवानो म्हारो रायपुर मे मेलो रे ।।
रायपुर रो राँडियो मरणेऊँ डरियो ओ काची छाती रो।
ए हरणाँ हरणाँ घोडा ठाकुर राठोडों ने दीज्यो रे।
एक तो परवानो मारो दरजीडा ने दीज्यो रे।
राठोडो री अगरखिया रगाई लिज्यो रे ।।
आऊ न लडाई लागी ओ मरणो हालरियो ।[1]

(29)

मत जा झगडा म, झगडा म काकी रा जाया सूसे ओ।
पागडिये पग देतां छडकै छीग वगी ओ, मतजा झगडा म ।।
ए मत जा झगडा म घोडलियो गमाई आवेलो।
नारे मत जा झगडा म काकी का जाया ओ।
चोवटिये रमतोडा थने बालक बरजै ओ मत जा झगडा म ।।
महलां बैठी थारी जरणी बरजै ओ, मत जा झगडा म ।।
महलां बैठी थारी लोडी ओ लाडी बरजै ओ, मत जा झगडा मे ।।
झगडा म न कीकर जाऊँ जरणी दूध थारो लाजे ओ ।
मत जा झगडा म, झगडा म बावलियो मरियो रे, मत जा झगडा म।
माटिडा मरवा ने घडिया ओ जाणो झगडा म ।।[2]

(30)

मोडकी मगरी रो पाणी पेल ढाल उतरियो ।।
आबूजी रा पाडा म अगरेज उतरियो ।
कानी टोपी रो हाँ हाँ काली टोपी रो,
देश म छावणियाँ नाखे के काली टोपी रो ।
देश म धुत्यारो आयो काई-काई लायो रे।
बना बलदाँ गाडी तो अगरेज लायो रे।

---

1 लेखक द्वारा सगृहीत
2. लखक द्वारा सगृहीत

भूरियो मुंडालो आया रे कालो उरजण जोत लायो रे।
देश म अगरेज आयो रे काई-काई लायो रे॥
फूट नाकी भायो में बँगार लायो रे।
कालो टोपी रो, हाँ-हाँ कालो टोपी रो॥
देश म धुत्यारो आयो र, भूरिया मूडा लो।
आबू न अजमेर वच म डोडो डाडी हुडका नाकी रे॥
घोडो रोवे घास ने टाबरियो रोवे दाणा ने
महला म ठुकराण्याँ रोवे जामण जाया ने॥
कै रोलो बापरियो बा, बा रोला बापरियो,
देश म अगरेज आयो रे रोलो बापरियो॥[1]

(31)

ढोल बाजे थाली बाजे भैलो बाज बाकियो।
अजन्ट न मार दरवाजे नाकियो॥
झूमे आउवो,
है ओ झूमे आउवो
आउवो मुलकाँ म चावो ओ के
झूमे आऊवो॥[2]

(32)

मुजरो ले-ले जी बावलिया होली रम राँची,
के मुजरो ले-ले जी।
भाईयो री सिकार माथे थारा हाथ म बढिया ओ,
गोगी रा लागोडा भाई भाकर भलिया ओ।
क मुजरो ले ले जी।
झाडी झगा म हाँ रे झाडी झगा म,
गोलियाँ चाँदी री चाली ओ॥[3]

---

1 लखक द्वारा सकलित

2 3 राजस्थानी लोकगीत—स० रानी लक्ष्मीकुमारी चूडावत, पृ० 199

के झाड़ी झगा मे ॥
टोली का टीकायत माथै गोरा ले नै आया हो।
कोट री बुरजाँ रे ऊपर भाटो लड़या ओ।
के मुजरो ले-ले नी।
भालो रे भलका में धणिया तरवारां तोली ओ।
भाटी ने ऊदावत भिड़्या चलती गोली ओ ॥
के मुजरो ले-ले नी ॥
वा वा मुजरो ले-ले नी, महलो री जगा गायो चरणी ओ।
के मुजरो ले-ले नी ! ॥[1]

(33)

चालो जोधाणे सहेल्याँ, आपा लूहर चालाँ ए,
गलै को गलपटियो म्हारो जोधाणै घड़ो जै ए।
जोधाणै को सोनी म्हानै प्यारो लागे ए,
ओढण को लहरियो म्हारो जोधाणे रँगी जै ए।
जोधाणे को मोडो म्हानै प्यारो लागे ए,
हाथां को चूड़लियो म्हारो जोधाणे चितरी जै ए।
जोधाणे रो लखारो म्हानै प्यारो लागे ए, चालो जोधाणै···।
श्री-श्री रा सिरिया दे, सिरिया दे लगाई बाड़ी
जी में ऊबी चपा डाली, चपा डाली लेरया लेय
झुक-झुक पूत हिलारो देय, पहलो पूत हताईदार
दूजो पूत साभर को सिरदार
डावै हाथ झबूको लेऊँ, जीमणे हाथ बाव खुणाऊँ
इण घर इतरी डीकरियाँ पणघट जितरी ठीकरियाँ
ज्यूं-ज्यूं चपा लेहरियाँ लेय, ज्यूं-ज्यूं पूत बधतो जाय
इण घर जाया घोड़ा ऊँट, इण घर जाया सात सपूत
·······इतरो मोटो हुई जो।[2]

1. राजस्थानी लोकगीत—स० रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, पृ० सख्या 199
2. मरुभारती—वर्ष 12 अक 21, पृ० 11

(34)

फागण की रुत आई रंगीली आई सखि होली रे
छेड़ मती बालम काची नीम निम्बोली रे
फागण रो दीवानो नाचे चग की धमाल पै
गाती लार चाली सखियाँ की टोली रे
भर पिचकारी मारे गोरे-गोरे गात पै
साड़ी को भीगी म्हारी भीग गई चोली रे
अँगुली पकड़ म्हारी बहियाँ मरोड़ी
छेड़े मती बालम उमर म्हारी भोली रे
फागण की रुत आई रँगीली आई सखि होली रे।

घुड़ला के गीत

(1)

घुडल्यो ए सोपारियां छायो।
तारां छाई रात।
जोधाणा राज मोत्या छायो,
राजा जी रा राज मे।
म्हे घुडला री तीजणियां हो वीरा,
थे हो मोटा राज।
म्हारो घूडल्यो राज वखाण्यो।
राठोडी रजपूत बखाण्यो ।।
सोजत रा सरदार बखाण्यो,
पाली रा परधान बखाण्यो।
जैतारण रा जाट बखाण्यो,
कुडकी रा कुम्हार बखाण्यो ।।[1]

(2)

घुडल्यो म्हारो लाडलो,
सैर म भाग्यो जाय रे भाई।
सैर मे भाग्यो काट्ल्यो,
नाई रे घरे जाई रे भाई ।।
छोरा मांगे चकरी भँवरिया।
छोरियां मांगे दूल्या हो राज ।।
ये लो छोरा चकर भँवरिया।
ये लो छोरियां दूल्या हो राज ।।[2]

1-2. लेखक द्वारा सगृहीत।

(3)

घुड़ला घूम छै जी घूम छै,
घुड़ले रे बांध्यो सूत।
ईसरजी रे जाया पूत। घुड़ला घूम० ॥
सुवासण बारे आव,
तन बन घी लाव। घुड़ला घूम० ॥
मोत्यां रा आखा लाव,
पीहर रो पीलो लाव। घुड़लो घूम० ॥
जापा रा लाडू लाव
घुड़लो घूम छै जी घूम छै ॥[1]

(4)

राता राता रेगनिया राता रंग का फूल जी।
गोरा-गोरा भँवरजी न हाथ भी परणावा जी ॥
हाथां मानो नाडनी वा झांझरिया झड़काव जी।
एक झांझर झड़ पड़ियो वा टूटी नागर वेल जी।
सासरिए मत जाइयो थारा वा सासू है घूनियारी जी ॥
घूनियारी तो धून थासी नाडी लहर आसी जी।
बड़ा घरां की बेटी आई वा माथ चूलो लाई जी ॥
धावल धोन मेंडासो मारियो मां सू लड़वा आई जी।
कांचली म कोथली वा चणा चबाती आई जी
लापसड़ी म बामण कौदा था म माख्यां मारी जी ॥[2]

(5)

जालोडी जल निपजै रे वीरा पाटण झुकी रे जँवार।
डूंगरसिंह जी रा गगासिंहजी ओ म्हारे घुड़ले रे सामां आव ॥

1 राजस्थान के लोकगीत—सं० डा० रामसिंह एवं अन्य पृ० 53 से 55
2 लेखक द्वारा संगृहीत

म्हें घुड़ले री तीजण्यां, ओ वीरा, थे घुड़ले असवार।
घुड़लो माँगे रोक रुपयो, दिवलो माँगे तेल॥
घुड़ले ने देसां रोक रुपैयो, दिवले ने देसां तेल।
घुड़ले ए सुपारयां छायो तारां छाई रात॥
भावज ए पूतां छाई बडोड़े वीरे घर नार।
नगरी ए मालेरा छाई, महाराज गंगासिंह जी रे परताप।
कामठडी मतवाया, ओ पातलिया गवरल रा दिन च्यार।
आगे ए म्हांरी गवर बड़ेरी लारे घुड़लो तैयार॥[1]

(6)

ईंट तपै, थकलो तपै, लूंदारियो लै,
कोई तपे सुरगी ईंट, जाजो मरवो लै।
है ऊँची मेडी उजली, लूंदारियो लै।
वाजणियो कीवाड, जाजो मरवो लै॥
है ऊँचे-ऊँचे महल दियो जगै, लूंदारियो लै,
बैमैं कूण ज पोढण जाय, जाजो मरवो लै॥
है जासी गोरा कन्हैयालाल पात लो, लूंदारियो लै,
थारी मरवण ढोलै वाव, जाजो मरवो लै।
है ढोल ढोलन्तां यूं कह्यो, लूंदारियो लै,
सायब, लाल चूडो पहराय, जाजो मरवो लै।
है लाल चूडो, गोरी, बहतां ने, लूंदारियो लै।
गोरी थाने नवसर हार, जाजो मरवो लै,
है इतरो कह्यो गोरी रुसगी, लूंदारियो लै।
बा दौडी पीवर जाय, जाजो मरवो लै,
हे देवर निसरियो वारणें, लूंदारियो लै।
भावज म्हारी ए मनाई घर हाल, जाजो मरवो लै,
हे थारी रे मनायी देवर, नहिं आऊँ, क लूंदारियो लै।
थारे वडोडे वीरे जो ने मेल, जाजो मरवो लै,
हे झटपट बांधी पागडी, लूंदारियो लै।

1. राजस्थान के लोकगीत—डा० ठा० रामसिंह एव अन्य, पृ० 53 से 55

हे दोड्यां बागा जाय, जाजो मरवो लै,
हे आली तोड़ी कामडी, लूंदारियो लै ।।
सड़कायो दोय-च्यार, जाजो मरवो लै,
फेर करोला रूसणो, लूंदारियो लै ।।
कोई फेर भागोला पीर, जाजो मरवो लै,
हे कदे इ न रूसूं रूसणो लूंदारियो लै ।
कदेइ न जाऊँ म्हारे पीर, जाजो मरवो लै,
चुड़लो तो आयो, गोरी, मडी में, लूंदारियो लै ।।
मडी री छाप दिराय, जाजो मरवो लै ।
हे चुड़लो आयो, गोरी, चोवटे, लूंदारियो लै ।।
चोवटिए दान चुकाय, जाजो मरवो लै
हे चुड़लो आयो, गोरी, ढोढ्यां म, लूंदारियो लै ।।
गलियारो लोक बखाणे, जाजो मरवो लै,
हे चुड़लो आयो गोरी, गालिया मे, लूंदारियो लै ।।
सुसरोजी आप सराय, जाजो मरवो लै,
हे चुड़लो आयो, गोरी आँगणे, लूंदारियो लै ।।
सासू जी आय सराय, जाजो मरवो लै ।
एकलडी चूडो नही पहरू, लूंदारियो लै ।
म्हारी सोदरा नणद बुलाय, जाजो मरवो लै ।
हे सोदरा कह हूं-नहि आवूंक, लूंदारियो लै ।
म्हारे आगे मोर नचाव, जाजो मरवो लै ।
हे मोर ज नाचे अधघडी, लूंदारियो लै ।
नणदोई नाचे सारी रात, जाजो मरवो लै ।।[1]

---

1 राजस्थान के लोकगीत—सं० ठा० रामसिंह तथा अन्य, पृ० 56

शीतला-पूजन

(1)

उँठाला री राणी वडलो वायो,
कलसा मे कूंपल चाली ओ नानी बाई।
कलस मे कूंपल चाली ओ फूलवाई,
घणो रे पियारो थांरो वड़लो।
आवरा री राणी वडलो वायो,
कलसा मे कूंपल चाली ओ नानी बाई।
कलसा मे कूंपल चाली ओ फूल बाई ॥
घणो रे पियारो थांरो बड़लो,
दूंधा जो ढीच्यो दहीयां जी ढीच्यो।
घी घोल पाल वधावो,
ओ नानी बाई घी घोल पाल वधावो ॥
ओ फूल बाई घी घोल पाल बधावो ॥
शीतला राणी वड़लो वायो,
कालका राणी बड़लो वायो।
कलसा मे कूंपल चाली ओ नानी बाई,
कलसा मे कूंपल चाली ओ फूल बाई।
घणो रे पियारो थांरो वड़लो ॥[1]

(2)

माता रे मदर चढनां सालूडो रलक्यो ए माय।
बड़ो वजा जी रो वेटो सालुड़ो ले आवे ए माय ॥

---

1. राजस्थानी लोकगीत—सं० गंगाप्रसाद कमठान, पृ० 11

परे म्हारी आद भवानी ऊँठाला री राणी,
बालुडा रखवाली ए माय।
बालुडा रखवाली भवानी खेडा रखवालो ए माय।
माता रे देवरे चढ़तां रखडी सरकी ए माय।
तेडो सोनीडा रो बेटो रखडी ले आवे ए माय॥
परे म्हारी आद भवानी ऊँठाला री राणी।
बालुडा रखवाली ए माय॥
माताजी रे देवरे चढतां तमण्यो सरक्या ए माय।
तेडो सोनीडा रो बेटो तमण्यो ले आवे ए माय॥
पेरे म्हारी आद भवानी ऊँठाला री राणी।
बालुडा रखवाली ए माय॥
माता रे देवरे चुडलो तडक्यो ए माय।
तेडो लेरादी रो बेटो ले आवे ए माय॥
पेरे म्हारी आद भवानी ऊँठाला री राणी,
बालुडा रखवाली ए माय॥
माता रे देवरे चढती झांझर खुलग्या ए माय।
तेडो सोनीडा रो बेटा झांझर ले आवे ए माय॥
पेरे म्हारी आद भवानी ऊँठाला री राणी।
बालुडा रखवाली ए माय॥
बालुडा रखवाली भवानी खेडा रखवाली ए माय॥[1]

(3)

शीतला को मेलो काई रोज रो भरे, छतरी ताण रे देवरिया
भाभी तावडे बले। भाई रे तावडे बले।
रायपुर को मेलो कोई रोज रो भरे, छतरी ताण रे देवरिया
भाभी तावडे बले। भाई रे तावडे बले।

राजस्थानी लोकगीत—स० गंगाप्रसाद कमठान, पृ० 120

गणगौर के गीत

(1)

खेलण द्यो गणगौर भँवर म्हान पूजण द्यो गणगौर
ओ म्हारी नणद रा वीर, म्हाने रमणे द्यो गणगौर।
माथा ने ममद लावजो, म्हारे माथा म ममद लाव,
म्हारा रखडी रतन जडाव हो म्हाने खेलण द्यो गणगौर।
हो म्हारी सइया जोवे बाट, सजन म्हान खेलण द्यो गणगौर,
म्हारी कांचली रे कौर दिराओ, भँवर म्हाने पूजण द्यो गणगौर।
सजन म्हाने रमण द्यो दिन दो चार।
भँवर म्हाने पूजण द्यो गणगौर ॥[1]

(2)

गौर ये गणगौर माता खोल ए किंवाडी,
बारै उबी थान पूजण वाली।
पूजो ए पूजन्ता वाली, कांई-कांई मांगो ?
का‌ह्न कँवर सो वीरो मांगा, राई सी भोजाई,
जलहर जामी बावल मांगा, राता देई मायड।
वडो दुमालिक काको मांगा, चुडला वाली काकी।
हांडा धोवण फूफो मांगा, झाडू देवण भूवा,
काजल्यो बहनोई मांगा, सदा सुहागण बहनी ॥[2]

---

1 राजस्थानी लोकगीत—सं० रामप्रसाद कमठान पृ० 13
2 राजस्थान के लोकगीत—सं० डा० रामसिंह आदि, पृ० 43

(3)

बँधी कमरकस खोल दो जी सायबा,
छोगो विराजे लेंरयो पागाँ म जी सायबा।
सायबा-सायबा, म्हू करां जी,
सायबा सोकड़ बाई रा सेण सा।
बँधी कमर कस खोल दो जी सायबा।
म्हू तो बुलाया होल्याँ पामणाजी सायबा,
आया गणगोरां री तीज रा।
म्हू तो जाण्यो राजन फूल गुलाब रा,
नीसर गया करण रा फूलड़ा।
बँधी कमर कस खोल दो जी सायबा,
छोगो विराजे लेर्‌याँ पागाँ मैं जी सायबा ॥[1]

(4)

म्हारा हुजा मारू याईं रेवो जी,
म्हारी लाल नणद रा वीर।
म्हान कुण खेलाव गणगोर?
म्हारा हुजा मारू याँई रेवो जी।
याँई रवो पातलिया सेण याँई रेवोजी
आपने रस्ता म भली गणगोर।
म्हारा हुजा मारू याँइ रेवाजी ॥[2]

(5)

म्हारा राजा आज तो गुलाबी गणगोर छै,
म्हारा राजा आज तो बसन्ती गणगोर छै।
माथा ने ममद अजब बण्यो छै,
रखड़ी पर मोर छै।

1. राजस्थानी लोकगाउ—पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० 35
2. वही, पृ० 37

म्हारा राजा आज तो गुलाबी गणगौर छै,
मुखड़ा ने वेसर अजब वण्यो छै।
टीली पर मोर छै,
म्हारा राजा आज तो गुलाबी गणगौर छै ॥[1]

(6)

मडी बैठ्यो मद पीवै ए, लीली केरो असवार।
खांगी बाधे पागडी ए, मधरी चाले चाल।
कड मोड घोडे चढै ए, चाल निरखतो जाय,
ओ वर देयी माता गोरल, ए, म्हू थांने पूजण आयी।
चुल्हे केरो चांदणो ए हांडी को हमीर,
नौ थाला पीवै रावडी ए सोला रोटी खाय।
यो वर टाली, माता गोरल ए, म्हू थाने पूजण आयी ॥[2]

(7)

म्हारे हाथां म जँवारा अेक कारा कुडा जल को भरयो।
म्हे तो सात सहेली अेक गवरल माता पूज रही।
वायां पूजण पुजास्यां अेक कांई धन मांग रही ?
म्हे तो लाव रे लिछमी अेक अन धन मांग रही।
थाने लाव ने लिछमी अेक अन-धन देस्यां,
वायां पूजण पूजास्यां अेक कांई धन मांग रही ?
म्ह तो सासू जसोदा अेक किसन वर मांग रही,
थाने सासू जसोदा अेक किसन वर देस्यां ॥[3]

(8)

गणगौर पूजूं गणपति ये, ईसर पूजूं पारवती ये,
पारवती का आला-गीला, गौर का सोना का टीला।

---

1 राजस्थानी लोकगीत—पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० 37
2 राजस्थानी लोकगीत—स० ठाकुर रामसिंह आदि, पृ० 45
3 वही, पृ० 44

टीला दे टपना दे रानी वरत करे गौरा द रानी,
करतां-करतां आस आयो मास आयो खरा खाड लाडू लायो।
लाडूडो ले वीर दीधो वीर ले मने चुदड दीधी
चुदड न मैं गौर ओढायो।
गौर ले मने सुहाग दीधा भागदीयो सुहाग भाग सोला सात।
कचोला वाडो भ वोजारो।
राणी पूजे राज म म्हू पूजा लोका सुहाग म।
राणी रो राज तपतो जाय म्हांरो सुहाग वधतो जाय ॥[1]

(9)

हे गवरल रूडो हे नजारो तीखे नैणां रो।
गढां है काटा सू गवरल उतरी।
हो जी वीरे हाथा कवन करो फूल ॥ हेगवरल० ॥
सीस है नारेला गवरन सरिखो
हो जी वीरो वणी छं बासग नाग ॥ हे गवरल० ॥
भवारे हो भवरो गवरन है फिरे
होजी वीर निनवट आँगन न्यार ॥ हे गवरल० ॥
आंखडियाँ रतन जडी
हो जी वीरा नाक सूवा केरी चूच ॥ हे गवरल० ॥
मिसरायां चूनी जडी
हो जी वीरा दात दाडम केरा बीज। हे गवरन० ॥
हिवडो मच ढानियो
हो जी वीरी छाती बजर किंवाड ॥ हे गवरल० ॥
पसवाड बीजल खिवे।
हो जी वारो पेट पीपल करो पान ॥ हे गवरल० ॥
मूगफली सी गवरन आँगली
हो जी वीरो बाँह चपा केरी डाल ॥ हे गवरन० ॥
पीडलियाँ रूवालियाँ
हो जी वीरो जाँघ देवल केरो थांम ॥ हे गवरल० ॥
एडी चमके गवरल आरसी
हो जी वीरो पजो सठवा-सूंठ ॥ हे गवरल० ॥

---

1 राजस्थानी लोकगीत—स० गंगाप्रसाद कमठान प० 6

घेर घुमालो गवरल घाघरो,
हो जी वीरे ओढण दिखण रो चीर ।। हे गवरल०।।
हे पाल चढती रा बाजे गवरल घूघरा,
हो जी वीरी ऊतरती री रिमझोल ।। हे गवरल०।।
ऊँचले सिंघासण, गवरल बैसणो,
हो जी वीरा हथ पखालूं पांय ।। हे गवरल०।।
हेमाचल जी री गवरल डीकरी,
हो जी वा तो पातलिये ईसर घरनार ।। हे गवरल०।।
किण तने घडी रे सिलावटे ।
हो जी वीने क्या तो लाल-लुहार ।। हे गवरल०।।
जलम दियो म्हारी मायडी,
हो जी वीने रूप दियो करतार ।। हे गवरल०।।
महाराजा हे देसी गवरल, दायजो,
हो जी वीरे सौय घोडा असवार ।। हे गवरल०।।
हाथ जोड करूं विनती,
हो जी वीरे लुल - लुल लागूं पाँय ।। हे गवरल०।।[1]

(10)

फली जी फली ओढणी, म्हारी ए कसूमल ओढणी,
बागां में फूली जी राज ।
सुसरा जी गढ का चौधरी, म्हारा बाप दिल्ली का राजाजी ।
म्हारी हरी ए कसूमल ओढणी, बागां मे फूली जी राज ।।[2]

(11)

देखा मोरी संइयां ऐ ।
विरमादतजी रे ढावे की गणगौर ।
रोतां बाई के वीरा की गणगौर ।।[3]

---

1. राजस्थान के लोकगीत—स० ठाकुर रामसिंह आदि, पृ० 39
2. राजस्थानी लोकगीत–स० गणप्रसाद नमदान, पृ० 7
3 वही, पृ० 9

(12)

ईसरदास घरां वधावण के,
गोरल जायो छँ पूत।
अगड घडावो बीरो,
भावजो रे हमनें नौसर हार।
वेल वधो मेरे बाप की रे,
ज्यूं माली ज्यूं दूब,
ज्यूं कोडो ज्यूं नाल।
टीरो चेपे साजनियां रो धीय के,
कान्ही राम थारो कुल बहु जै,
आवेगा कान्होराम जो का पूत,
जीवे थारो मन रसी जै ।।[1]

(13)

गोरो ईसर दास बायां,
ऐ बाई गोरस सीचलिया।
ईसरजी तो पेंचो बांधे,
गोरां बाई पेच सँवारे ओ राज।
म्हे ईसर थारी माली छां,
पहल पटोलो ओढ दुरगो,
नीसरी बो बीरां ! ईसरदास थारी नार ।।[2]

(14)

ऊँचो सो पीपल कोपल्यो हो देव।
वहाँ बैठी गाय गोठाण ।।
वायर पिछोडी वो गालणो हो देवां।
रनु बाई भातलई जाय ।।

---

1. राजस्थानी लोकगीत—स० पमाप्रसाद कमठान, पृ० 11
2. वही, पृ० 12

अव तज जो धणि, एर जीन देखियो हो राजा।
मोटी लीनी कणिएर सोटी।
एक जो मारी, न दूसरी,
न हो राजा, तीसरी म जोड़्या हाथ।
जो यें धणियेर सोटी मारसो, हो राजा ।।
नही म्हारे मायन बाप।।
नही म्हारी माय न मावसी, हो राजा।
कुण म्हारो आणो लेई जाय।।
कलजुग म (अमुक) भाई मानवी हे राजा।
ऊँधारो आणो लई जाय।।
(अमुक) भाई देमी तुम रव बाजुठ हो राजा।
लाडो वाई लाग से थारे पांव ।।[1]

(15)

म्हारे वीरे जी मांडी गणगौर हो रसिया,
घडी दोय खेलवा ने जावा दो।
घडी दोय जावतां ने,
घडी दोय आवतां ने।
घडी दोय साहिल्यां म,
लागे छै हो रसिया।
घडी दोय खेलवा ने जावा दो,
घडी दोय खेलती, पलक दोय खलती।
सायणियां म सारो दन खोवे ए मिरगा नैणी,
थारे बिना म्हारो हिवडो भरियो डोले।।
थांकी नथ भलके, माथो थारो चलके।
चूडो थारो चिलके,
थांका नैणां रो नजारो, प्यारो लाग छै जी गोरी।
थारे बिना हिवडो भरियो डोले।[2]

1. राजस्थानी लोकगीत—स० गयाप्रसाद कमठान, पृ० 14
2. वही, पृ० 19

(16)

काँई रे जवाब करूँ रसिया से ?
जवाब करूँ जी मुवाल करूँ० ।
केंसरिया रे सामी जाती डरूँ जी,
काँई रे मुवाल करूँ रसिया से ?
जी साहिबा खेलन गई गणगोर,
अबोलो म्हासूं क्यूं लियो जी महाराज ।
जी सायब छोटी नणदजी थाँकी बैन,
बाईसा कर मानती जी महाराज ।
जी सायब काँई लगाई अतरी देर,
कसूर म्हारो नायजो महाराज ।
अजी थे तो पूजो गणगोर,
अजी थें तो माडो गणगोर ।
छैल दुपट्टो द्यो तो,
दुपट्टा री लेस द्यो तो,
पीली-पीली मोहरां द्यो तो पूजूं गणगोर ।
अजी मे तो मांडू गणगोर ।।[1]

(17)

म्हारी मैना थने हाथी[2] भी देऊँ घोड़ा[2] भी देऊँ,
जाए मैना सासरे !
थाँरा हाथी[2] भी नही लेऊँ, घोडा[2] भी नही लेऊँ,
दादा जी[2] मूं तो नहीं जाऊँ सासरे

(18)

नथमल जी रो सेरियो साँकडो ओ नथमल,
नीं भावे म्हारी सहेलियाँ रो साथ,

1. राजस्थानी लोकगीत—स० गगाप्रसाद कमठान, पृ० 20
2 हाथी-घोडा के स्थान पर, गाय-भैस, बकरी-बरकी, ऊँट-टोडिया आदि पशुओ के नाम लेकर पुनरावृत्ति तथा दादा जो के स्थान पर विभिन्न सबंधियो के नाम लेकर पुनरावृत्ति

ओ काजल ज्यूं घुल जाऊं थारे नैण,
नयमल जी रो ढोलियो सांकडो ओ नयमल,
नी भावे म्हारा घाघारिया रो घेर,
ओ मेंहदी ज्यूं रच जाऊं थांरे सैंण।

(19)

थांरी तो गलिया म लाखो सचरियो ए उमा,
घर-घर घालिया हिंगलाट।
ए लाखो फूलाणी सुन्दर लेरियो ए उमा
था छो राखो जी मोटा थावटिया ए उमा।
म्हारी छोटी गेंद गुलाल,
ए लाखो फूलाणी सुन्दर लेरियो ए उमा।

(20)

लेद्यो-लेद्यो जी हजारी नौसर हार, ले द्योजी बाई का वीरा झूमखडो।
म्हारे दादा जी रे माडी गणगौर, दादासारो रे माड्यो रग रो झूमखडो। ले द्यो…
थारे कोठे बिराजे नौसर हार, कोडे बिराजे रग रो झूमखडो। ले द्यो…
थे कोठे भूल्या नौसर हार, कोठे लो भूल्या रग रो झूमखडो। ले द्यो…
सुख सेजडल्यां मे भूल्या नौसर हार, ढालिये रे पाये रग रो झूमखडो। ले द्यो…

तीज के गीत

(1)

ओ माँ, चपा बाग मे हीडो घला दे, तीज नवेली आई।
ओ माँ, और सहेल्याँ रे घर स हीडो म्हारे हीडो नाही॥
ओ माँ, हीडा हीडण मूँ गई, कोइ न हीडे हीडाई।
सँग सहेल्याँ म्हासूँ मुख मोडियो, बिना हीडयाँ ई आई॥
ओ माँ चपा बाग म हीडो घलादे, तीज नवेली आई।[1]

(2)

आई-आई माँ पैल सावण री तीज
तीज्याँ ने भेली माँ सासरे।
और सहेल्याँ माँ झूलण जाय खेलण जाय,
म्हने मण रो मा पीसणो।
म्हने मण रो माँ पोवणो,
पीसत-पीसत माँ दुख्या मौर।
पोवत दुख्या माँ पेरवा,
पोई-पोई माँ रोटियाँ री जेट,
एक पोयो माँ बाटियो
नीवट्या नीवट्या माँ देवर जेठ,
सकल नीवटो माँ नणदूली।
औराँ ने तो दीधा माँ फुलका च्यार,
म्हने बटल्यो माँ एक लो।

---

1 परम्परा—लोकगीत, पृ० 191

ओरों ने मां धपसां धपसां खांड,
म्हने धपसो मां लूणरो ।
ओरां ने मां पली-पली धी,
म्हने मरियो मां तेल रो ।
ओरां ने मां वाटकियां-वाटकियां खीर,
म्हने वाटको मा रावको ।
मांजूं-मांजूं मां वडा जेठ रो थाल,
वाटियो लेग्यो मां मिनकियो ।
भागी-दौडी मां मिनकिय री लार,
कांटो भाग्यो मां कैर रो ।
आयो-आयो मां पीवरिया रो काग,
ओ लै कागा थूं जाय दिखाई म्हारी मावड न,
नीसर-नीसर राजकँवर री मांय,
निरखो-निरखो भोजन थारी धीवड रो ।।[1]

(3)

पेल सावणिया री तीज, गोरी तो रमबा निकलया जी राज ।
देवो नी सासूजी म्हने सीख, सहेल्यां जोवे वाट जी,
जावो जावो मोटां घर री नार तीज खलने वगा आवसी जी राज ।
खेलन्ता-रमन्ता लागी वार, सासूजी तेडो मोकल्यो जी,
घरां ए पधारो सुगणी नार, वालुडो रोवे पालणो जी राज ।
खेलन्ता-रमन्ता लागी वार, भाभी सा तडो मोकल्यो जी,
घरँ पधारो सुगणी नार, उडीके थारा साहिवा जी राज ।
जडिया रे जडिया वजड किवाड, ताला जडिया वीजलसार रा,
खोलो-खोलो बजड किवाड, सुन्दर ऊभा बारणे जी राज ।
भांग्या-भाग्या वजड किवाड, ताला ने तोड्या वीजलसार रा,
आई-आई मारुजी न रीस, गोरी पै वाह्यो चाबटियो जी राज ।
आई-आई मारुजी न रीस, म्हेलां सूं नीचा उतरिया जी,
खोल्या-खोल्या सोला सोला सिणगार, रातो ओढ्यो पीयर पोमचो ।
देस्यां-देस्यां घेवरिया री गोठ, गोरी रो रुसणो मा भागस्यां जी,

---

[1] राजस्थानी लोकगीत—श्रीमती लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, पृ० 44

मात भायाँ री ल्होडी वेन, पीयर पूरो पाडस्यां जी राज ।
घोलो घोडो झरमर पूंछ, जेठसी आणो आवियो जी,
जेठ सा आप ही म्हारा बाप, ज्यूं आविया ज्यूं जावज्यो जी राज ।
राती घोड़ी झरमर पूंछ, देवर सा आणो आविया जी,
देवर सा आप ही म्हारा वीर, ज्यूं आविया ज्यूं जावियो जी राज ।
सात घोडा पोजस असवार, सायबजी आणो आविया जी,
मानो-मानो मोटा घर री धीय, सायबजी आवियाजी राज ।।[1]

(4)

मोटी-मोटी छांटां ओसरयो, ए बदली, ओसरयो ए बदली,
काई जोडा ठेलम ठेल ।
सुरगी रुत आयी म्हारे देस, भली रुत आई म्हारे देस,
ओ कुण बीजे बाजरा, ए बदली, बाजरो ऐ बदली,
ओ कुण बीजै मोठ मेवा मिसरी ।
सुरगी रुत आई म्हारे देस, भली रुत आई म्हारे देस,
ईसर बीजै बाजरो ए बदली, बाजरो ए बदली,
कानू बीजै मेवा मोठ मिसरी ।
सुरगी रुत आई म्हारे देस, भली रुत आई म्हारे देस ।।[2]

(5)

सावण तो लहरयो भादवो रे बरसै च्यारू खूंट,
म्हारा मोरला, सावण लेहर्यो रे ।
सावण आई गवरां सासरे,
कन्हैयो बीरो लेणिहार ।
म्हारा मोरला, सावण लहरयो रे,
सावणियो सुरगलो रे लाल,
आसी बीरो कन्हैयालाल पावणो ।

1. राजस्थानी लोकगीत—श्रीमती लक्ष्मीकुमारी चूडावत, पृ० 46
2. राजस्थान के लोकगीत—स० ठाकुर रामसिंह आदि, पृ० 61

लासी वाई गँवरा ने वैलडली जुपाय,
म्हारा मोरला, सावण लेहर्यो रे ।।[1]

(6)

थाने-थाने, अै म्हारी वाडाँ री वडवेल, थानें य कुण सीचेगो ।
सीचे-सीचे, अै म्हारो सावणिया री लोर, भादूडे रो झड झेलैगो,
थाने-थाने, अै म्हारी रुकमण बहन, थान ये कुण लावैगो ।
लावै-लावै, अै म्हारो रुकमो वीर, माय मिलावैगो,
थाने-थाने अै म्हारी रोवण बहन, थान ये कुण लावैगो ।
लावै-लावै, अै म्हारो कानूडो वीर, माने मिलावैगो ।।[2]

(7)

लाग्यो-लाग्यो, मां, सावणिये रो अे मास ।
सावणिये रो अे मा, तीजतिहाराँ, माँ, बावडी जे,
और सहेली, मा, पीवरिये न अे जाय ।
पीवरिये ने अे जाय, हूँ तो तरसूं, मा, सासरे जे,
उडज्या-उडज्या, म्हारा नीमडली रा रै काग ।
नीमडली रा रे काग, वीरो आवै मेरो पावणो जे,
बोलूं-बोलूं, मा, बालाजी रा अे रोट,
बालाजी रो परसाद, चढ-चढ देखूं, मा, डागले जे,
आयो-आयो, मा पीवरिये री अे कूँज ।
पीवरिये री अे कूँज, आयर बैठी, मा, नीमडी ज,
कूँजा राणी, थारे गल म कठली अे बांध ।
गल मे कठलो अे बाँध, पगल्या बांधा थारे घूघरा जे ।
कह्ज्यो-कह्ज्यो, म्हारी माऊजी ने अे जाय ।
माऊजी ने अे जाय, वीरो भेजे क्यूं न लैण न ।।[3]

---

1 राजस्थान के लोकगीत—स० ठाकुर रामसिंह, पृ० 62
2 वही, पृ० 63
3. वही, पृ० 64

(8)

तीज सुण्यां घर आव ।
मझल आपरी नौकरी जी म्हारा राज,
तीज सुण्यां घर आव ।
कूण दिसा आपरी नौकरी जी म्हारा राज,
कूण दिसा नालूं वाट, तीज सुण्यां०
उगाणी दिसा नालूं वाट, तीज सुण्यां,
आथूंणो दिसा नालूं वाट, तीज सुण्यां०
पांच टकां री आपरी नौकरी जी म्हारा राज,
लाख मोहर री तीज, तीज सुण्या० ।।[1]

(9)

आंबेजी बैठी कोयलडी,
दोय सबद सुणावे जी—
जाय ढोला जो ने यूं कहिजे,
पैली तीज पधारे ।
खरची खंदाऊं म्हारा बापरी,
पैली तीज पधारे ।
खरची घणी है म्हारी मारुणी,
नही है राजाजी री सीख ।
घुडलो खंदाऊं म्हारा बाप रो,
पैली तीज पधारे ।
घोडला घणा है म्हारी मारुणी ।
नही दे राणा जी म्हाने सीख,
आडी तो गोरी ! नदियां फिर रही ।
वैरण हुई है बनास,
कीर रा बेटा म्हारा भायेला ।
धीरा म्हारा ढोलाजी ने पार उतार,
कांई तो देस्यां रीझ रो ।

1. राजस्थानी लोकगीत—पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० 40

कोई तो देस्यां म्हाने इनाम,
कडियाँ री कटारी देस्यां हो वीरा म्हारा।
सेज चढियाँ रो सिर पाव ॥[1]

(10)

अनोखा कुँवरजी ओ सायबा झालो देऊँ घर आय,
माथा ने मेमद लावज्यो रखडी रतन जडाय।
कानां ने झाल घडावज्यो सायबा जुठडा जोड देवाय,
मुखडा ने बेसर लावज्यो सायबा तमण्यो पाट पोवाय।
बइयाँ ने चुडलो चिराज्यो कांई गजरे मजरो देवाय,
कडयाँ ने कमूमल लावज्यो केसरियाँ कोर देवाय।
अगोठा ने अणवठ लावज्यो फूलस्याँ घूघराँ देवाय,
रतन कुबो मुख सांकडा ने लांबी लागे नेज।
हाथी री मेदो घसी ने गयो कमर को तेज,
महलाँ फोडा काकडी थो, सैजाँ रालू बीज।
अनोखा कुँवरजी ओ सायबा म्हाने कुण खिलासी तीज ॥[2]

(11)

आज्यो रंगीला तीजाँ पांवणां, मुरधरिया मारू ने,
खारक पानया खोपरा सरे, म्हूँ कामण करती कोड़।
जद विलसण रूत हुई सरे गया तिरसती छोड।
मुरधरिया मारू ने ॥
गयाँ तिरसती छोड सुलखणी नार ने।
असी नी करवो जोग भँवर भरतार ने ॥
आज्यो रँगीली तीजाँ पांवणां।
हसा समदर जब छोडोजी काई,
जद समदर खारा होय।
डाबर-डाबर भटकता जी थांने,

1. राजस्थानी लोकगीत—पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० 40
2. राजस्थानी लोकगीत—डॉ० गयाप्रसाद कमठान, पृ० 21

मलो वनोई जी म्हारी बहन न
आयोडी सावणिय री तीज । म्हा
म्हारे तो मल्याँ सा'रा जी नहो सर
कुण जी रे भातो नाय ? म्हाँ
कुणी जी रे पीसे म्हारे पीसणो
कुणी जी रे म्हो रे बिलोय ! मेहाँ
वैनड तो पीसै थारी पीसणो
मा थारी म्हा र बिलोय । मेहाँ
वैनड तो म्हारी सासाजी चिडकली
आज उडै परभात । मेहाँ
माता तो सा'रा जी म्हारी डोकरी
आज मरे परभात । म्हाँ
इतरी तो कयो सा'रो रूसणो
कियो रे घोडलिये जीण । म्हाँ
घडी एक तो थाम वीरा घोडलो
कराँ रे मनड री वात । मेहाँ
पगाँ तो वनती वीरा हूँ फिरू
बाँधी तो आकडले रा पान । मेहाँ
माथे तो मोडी वीरा हूँ फिरूँ
बाँधा पीपलिय रा पान । मेहाँ
माता तो सुणतै वीरा मत कह्यो
झूरतै बरसाल री रात । म्हाँ
भावज तो सुणते वीरा मत कह्यो
करस पीहरये म वात । मेहाँ
बाप जी सुणताँ वीराभल कह्यो
माड रे करहे पलाण । मेहाँ ॥[1]

(15)

होडो घला दे ओ हाँ ओ म्हारा कान्ह कवर सा वीर
आई ए सावणिय री तीजाँ वाई होडसी ।

1 राजस्थान के लोकगीत—ठाकुर रामसिंह आदि पृ० ॥

घल्यो घलायो, अे हाँ अे बाई, पड्यो हिंडोला खाय,
हींडण वाली बाई गवराँ सासरे।
जोड़ो खुदादे, अे हां ओ म्हारा जलवल जामी बाप,
आई रे सावणिय री तीजाँ, वाई झील सी
खुदियो ए खुदायो, हाँ ए वाई, थारो भरयो ए—
झिलोला खाय।
झीलणवाली बाई गवराँ सासरे,
चुड़लो चितरादे, अे हाँ म्हारी राता देई माय।
आई ए सावणिया री तीजाँ, बाई पहरसी,
चितरियो ए चितरायो,हाँ ए बाई, थारो पड्यो ए मणियारा की हाट।
पहरण वाली बाई गवरा सासरे ।।[1]

(16)

आयी-आयी तीज नुहेली, सब सखियाँ रग राच्यो।
औरां का पिवजी घरां अे बसत है म्हारा बसे छै परदेश ।।
औरा की तीज सुरगी होसी, म्हारे घर रहसी रग काचो,
आयी-आयी तीज नुहेली, सब सखियाँ रग राच्यो।
अेक सखी म्हारी पहरी पायल बिछियाँ री रमझोल,
दूजी सखी म्हारी पहर टोडरो पिवजी ने जाय दिखायो।
आयी-आयी तीज नुहेली सब सखियाँ रग राच्यो,
तीजी सखी म्हारी पहर टेवटो नथली सूं रूप सँवारियो।
चौथी सखी म्हारी चुनड ओढी गले म मातीडा रो हार,
और सहेली म्हारी महदी माँडी, नैणां सुरमो सार्‌यो।
ओढ पहर कर गरब गुमानण पिवजी रो मन हर खायो,
आई-आई तीज नुवेली सब सखियाँ रग राच्यो ।।[2]

(17)

चदा छिप ज्या रै बदली माँहि, क्यूँ म्हारी देह जलावै, पापी चदा।
थो तेज म्हांसू सह्यो न जाई, चदा छिपज्या रे बदली मांही।
मैं काँई थारो करिया रै विगाड, थूँ आप जलियो, नै मोय जलाई। चदा···

1 राजस्थान के लोकगीत—स० ठाकुर रामसिह आदि, पृ० 84
2. वही, पृ० 91

मैं झूर रही म्हारे पीव नैं, तू मोय आय सताई। चदा…
जे थूं ओ ज्यूं दावेगो, तो थने राम दुआई, चदा छिपज्या रै बदली माँहीं॥[1]

(18)

बदली ए म्हारो चाँद छिपायो, उठ-उठ बदली म्हारे घर आई।
महलां ऊपर घेरो ए लगायो, बदली ए म्हारो चाँद छिपायो।
कुणसी दिसा सूं आई ए बदली, कुण म्हारो घर ए बतायो। बदली ए…
दिखण दिसा सूं आ उठी रै बादली, कुण म्हारो घर ए बतायो। बदली ए…
क्यों ए बदली म्हारो चाँद छिपायो, क्यों घर म्हारेए घेरो लगायो। बदली ए…
रतनागर सूं नीर जे भरियो, बरसण ने घेरो ए लगायो। बदली ए…
घहर-घुमेर ऊमडी बादली, थारो चाँद ओट में आयो। बदली ए…[2]

(19)

आयो-आयो सावण भादवो, कोई काली घटा घिर आय।
आज म्हारी बादली बरसैगी।
म्हारो बीरो जी बीजै बाजरो, म्हारा भाभी जी काटैं फोग। आज…
म्हारा काकाजी चरावैं टोडिया, म्हारा माउजी लावै छकियार। आज…
म्हारा बैला ने चारो मोठ रो, म्हारा हालीडा नै गुदली खीर। आज…[3]

(20)

चाँदा तो थारे चाँदणे जी ढोला पाणियाँ गई जी तलाब,
ओ जी भँवर थाँकी बादली म्हाँको लहरियो भिगोयो जी।
लहरियो सुखायां सामी साल में, म्हारी साल पवासा ले, ओ जी भँवर…
मूं म्हारी माँ की लाडली जी ढोला मोत्याँ बिचली लाल,
सासू के मैं लाडली जी ढोला राजन आग न्याव, ओ जी भँवर…

---

1 परम्परा, वर्ष 1 अंक 1, पृ० 175, 176
2 वही, पृ० 175
3 वही, पृ० 173

काली हांडी झोझरी जी वाबी ढकणादार,
म्हारा भंवर की भायली जी वाबी नखरादार। ओ जी भँवर ''
कालो वैंगन कागदी जी पडियो रसोइयाँ मायने,
दो गोरियाँ को सायबो पडियो पगोत्याँ बीच। ओ जी भँवर'''
सूरज थाने पूजती जी भर-भर मोत्याँ थाल,
छन्याक मोड़ो ता उगज्ये जी म्हारा भँवर चढे दरबार। ओ जी भँवर'''

(21)

वालो लागँ छँ म्हारो देमडो, अे लो
चमकर जाऊँ परदेस, वाला जो।
ऊँचा-ऊँचा राणा जो रा गोखडा, अे लो,
नीचे म्हारे पीछाले री पाल, वाला जो।
बादल छाया देस म, अे लो,
नदियाँ नीर हिला हिल र।
बादल चमकै बीजली,
चमक-चमक झड लाय।
सरवर पाणीडे ने मैं गयी, अे लो,
भीजै म्हारे मानूश री कार, वाला जो। वालो लागँ छै'''[1]

(22)

सूरया वीर वदली ल्याई रे! झाला दे-दे तोय वुलाऊँ।
थूँ म्हारे देमाँ आई रै, सूरया वीर बदली ल्याई रै,
जेठण आवै, माढण आवै, सावण अलवत आई रै। सूरया वीर'''
पग पाणी पालर करदे, तो सिर बादलियाँ छाई रै,
पिणियार्‌याँ खुमियाली कर दे, घर मे ताल भराई रै। सूरया वीर'''
पिणियारयाँ तोय घराँ उडीकै, हाली खेताँ माई रै,
बूढा-ठेरा पूँन पिछाणै, थूँ दा झोला दे ज्याई रै। सूरया वीर'''

---

1 परम्परा वर्ष। अक, पृ० 17।

(23)

च्यार मास चोमासो सावण सह्यो ए न जाए,
सह्यो ए न जाए, म्हांसे रह्यो ए न जाए।
कह्ज्यो म्हारे बाबैजो[1] नै लै क्यूं नी जाए ?
बाबोजी[1] भेज्या रुपया पचास,
कह्ज्यो मोतियाँ नै बरनैं बारा मास। च्यार मास''''
कह्ज्यो म्हारी भाभी जो नै बुलाय क्यूं नी लेय ?
भाभी जी भेजो अमल की डली,
कह्ज्यो म्हारी नणद ने खाय मरे।

(24)

सोढा जी राणा लागा-लागा जेठ-असाढ,
लगतौ लागा जी सावण भादवा।
म्हांने म्हांके पीयरिये पुंचाई, ओलूडी आवे मायड बाप की॥
भायाँ की बेनड ओलू डो परी ए धुकाय,
मायड का भोला सासू भाँगसी। म्हांने म्हांके'''
भायाँ का भोला देवर भाँगसी। म्हांने म्हांके'''
बेनडरा भोला नणदल भाँगसी। म्हांने म्हांके'''
सोढाजी राणा सासू म्हारी कदकी मायड,
उठ' न परभातिये म्हांने बहू कैवसी। म्हांने म्हांके'''
सूसरो जी म्हारो कदको बाप जी,
उठ' न परभातिये म्हांने बहू कैवसी। म्हांने म्हांके'''
बाबल म्हारो बेटी कह बतलाय,
मायड म्हारी बेटी कह बतलाय। म्हांने म्हांके''
सोढा जी राणा देवरियो म्हारो कदको वीर,
उठ' न परभातिये म्हांने भावज कैवसी। म्हांने म्हांके'''
सोढा जी राणा नणदल म्हारी कदकी बेनडी,
उठ' न परभातिये म्हांने भावज कैवसी। म्हांने म्हांके''

---

1 के स्थान पर वीरा जो, काका जो आदि नाम लेते हैं।

(25)

उड-उड रे मोर्‌या चढ डूंगरां, तूं तो ल्याइ रे मेवां री बात,
मोर्‌या चोमासो रे सावण सुरगो बोलर्‌या।
हरिया लै रे धोरां धामण झुक रयो।
म्हारे बाबाजी रे सुणतां मोर्‌या मत कह्‌ज्यो,
वै तो आवैगा चोधर छोड, मोरया चामामो रे…
म्हारे ताऊ जी रे सुणतां मोर्‌या मत कह्‌ज्या,
वै तो आवैगा चोधर छोड, मोर्‌या चोमासो र…
म्हारे बाबूजी रे सुणतां मोर्‌या मत कह्‌ज्या,
वै तो आवैगा लीलडो पलाण, मोर्‌या चामासा रे…
म्हारी दादी जी रे सुणतां मोर्‌या मत कह्‌ज्या,
वै तो झुरैगा बुगचा जी खोल, मोर्‌या चामासा रे…
म्हारी माई जी रे सुणतां मार्‌या मत कह्‌ज्या,
वै तो झुरैगा मेहदी पिसाय, मोर्‌या चामासा रे…
म्हारी ताई जी (चाची जी, भाभी जी) रे सुणतां मत कह्‌ज्या
वै तो हांसैगा पर घर जाय, मोर्‌या चामासा रे…

(26)

चूनड फाटी ए मां पीवर की, कोई फटी [illegible],
मायड नै कईयो जै कोई आवै लेवण नै।
कीने भेजूं बाई थांनै लेवण न?
बाबो जी सांभर का सिरदार, ताऊजी [illegible] दरबार,
बापू जी दिल्ली के दरबार, वीरो जी [illegible] दरबार।
भतीजो बालक य बाई झूलै पालणै।
कब्जो (लहगो) फाट्यो ए मा पीवर का,
कोई फाट्यो बायां (गोडां) मोय।
मायड नै कह्‌यो जै कोई आवै लेवन नै।
कीने भेजूं बाई थांनै लेवण नै?

(27)

बाड म बकरियो बोले मैं जाणूं सोन्दलिया प,
सोन्दलिये की आड घडार्दूं, रूपे का मादलियो प।
पैर ये मुरलीधर की गोरी तेरा बाप घडायो ये,
मैं नहो पर्रूं एकली म्हारे इन्द्रा वैण बुलाद्यो ये।
इन्द्रा कैवे भाती भीजूं—जाती भीजूं वेलडी जुपाद्या जी,
वेलडी को अणियो खोटो, मणियो खोटो, खाती ने बुलाज्यो जी।
खाती कै मरी आँख छोटी, नाक मोटी, घूघरिया लगायो जी,
घुघरां रो रिपियो लाग, थारे खुशी पडे तो आवो जी।

(28)

हरिया माँगां रो हरिया सूवटो, उडतो-उडतो चुरू कानी जाई रे, सूवटा।
जाय सगां जी ने यूं केई, एकरस्यां म्हारी * (कन्या का नाम) बाई ने भेजो।
थारी तो बाई ने भेज्यां नीसरे, आंगणिया अडाला, घर सूनो जी, सूवटा।
गोखां तो बैठ्यो बैणाई यूं कैवे, म्हारे रगमहल की चाबी कौन सूंपाजी, सूवटा।
गोखां तो बैठ्यो बैणाई यूं कैवे, एकरस्यां म्हारे साला जी नै भजो जी, सूवटा।
थारै सालां जी नै भेज्यां ना सरे, रोकड की तो चाबी कीनै सूपांजी, सूवटा।

चतड़ा-चौथ

(1)

चतडा चौथ भादूडो,
दे दे माई लाडूडो।
लाडूडा मे पान सुपारी,
चौथी राणी हुई बिराणी।
सुण सुण ए रामा की माँ,
थारो बेटो पढवा जाय।
पढवा की पढाई दे,
गुराँ साहब ने पाग बँधा।
गुराणी न वेस दिरा,
चतडा न चार लाडूडा दिरा।
आलो दूँढ बयालो दूँढ,
बडी बहू को बुगचो दूँढ।
छोटी बहू की पटी दूँढ।
दूँढ-ढाँढ क बारे आव।
जोशीजी ने रिप्यो नारेल दिराव ॥[1]

(2)

मनश बाबा मोरिया।
एक लाडूडो चोरिया ॥[2]

---

1. राजस्थानी लोकगीत भाग 1, सम्पादक [illegible], पृ० 55
2. वही, पृ० 57

दीवाली के गीत

(1)

सोने रो म्हे दिवलो घडास्यां,
रेशम बाट बटास्यां जी।
चार बाट रो चोमुख दीवो,
घी सूं म्ह पुरवास्यां जी।
चांदी रा थाल मेल म्हारो दिवलो,
रँग मेल मे ले जास्यां जी।
मई-मई बाट, सुरग म्हारो दिवलो,
रँग महल ले जास्यां जी ॥[1]

(2)

काँई दसरावा रो मुजरो दीवाल्यां घर री करज्यो जी ढोला।
काँई कांकडियां पधारिया जी ढोला, कांकडियां कलस बदायाजी ढोला ॥
काँई बांगा मे पधारिया जी ढोला, मालीडे फूलडा बँधाया जी ढोला।
काँई चौवटिए पधारियाजी ढोला, चोरास्यां चंवर ढुलायाजी ढोला ॥
काँई दरवाजे पधारियाजी ढोला, दरवाजे हस्ती झुकाया जी ढोला।
काँई मेला म पधारिया जी ढोला, काँई मेलां मे मगल गायाजी ढोला ॥
काँई दसरावा रो मुजरो, गढपतिया राजा आवोजी मेला।
दीवाल्या घर री करजो जी ढोला ॥[2]

राजस्थानी लोकगीत—श्री जगदीशसिंह गहलोत, पृ० 81
राजस्थानी लोकगीत—पुरुषोत्तमदास मेनारिया, पृ० 45

(3)

हरणी हरणी थूँक्यूँ दुबली ए[1] चाल म्हारे देस ।
राता गऊँवा री गूँगरी—ए, नवी तली रो तेल ॥
सल्हा साय जादी लोडी, मूँ तो हरणी गावा निकलियो रे ।
कूँण मल्यो दातार? लीला घोडा रो सवार, रामजी दुनियाँ रो दातार ।
सल्हा सायजादी लोडी, लोडी-लोडी थनैं क्णी रँगी ए ।
रँगीए रामे भील, रामा भील ने बुलावो रे ।
नाक मे घालूँ तीर ।
सल्हा सायजादी लोडी, आम्बो निपज्यो भाई मालवे रे,
डाल लगी गुजरात ।
फल लागा भाई दुवारका रे खाम्यो बदरीनाथ ।
सल्हा सायजादी लोडी ॥[1]

(4)

हीड ले रे हिंडोल्या, पाले-पाले घूघेल्या ।
बीकानेर की छुडकली कात नैंन्यो सूत ।
सूत लेरे लापोरिया, नरखे माजन लोग ॥[2]

(5)

रतन सियालो राजन यूँ ही गिया जी,
उनाला रा चार मीना ।
चौमासा रा चार मीना ।
सियाला रा लागे थोडा-थोडा ।
म्हारा जोडी रा,
रतन सियालो यूँ ही गियो जी,
उनाला रा पोमचा, चौमासा रा लरिया ।
सियाला रा फागण्या, छपावो म्हारा जोडी रा ॥
रतन सियालो राजन यूँ ही गिया जी,

---

1 राजस्थानी लोकगीत—श्री पुरुषोत्तम मेनारिया, पृ० 45
2 लेखक द्वारा संगृहीत

उनाला रा बापरे, चौमासा रा मामा रे।
सियाला रा मान लेई चालो जोडो रा।
रतन सियालो राजन यूं ही गियो जो।
उनाला रा चौक म, चोमासा रा मही म,
सियाला रा ओरिये, पोढावो म्हारा जोडी रा।
रतन सियालो राजन यू ही गियो जो॥
उनालो फेर आवेलो, चौमासो फेर आवेलो।
सियालो फेर आवेसो, गयोडो जोवन नहीं आवेलो।
पाछो म्हारा जोडी रा॥
रतन सियालो राजन यूं ही गिया जो॥[1]

(6)

चादा थारी चानणी म खेलू सारी रात।
घूमर लेती ख्याल म॥
सहल्यां हूलो रालियो खलण चाली माय ए।
यू घूमर लेती ख्याल म।
पांवा रा बाजै बिछिया या पायलडी झणकारे ए।
यू घूमर लेती ख्याल म॥
खेलता जो हरणी आथमी आधी गी रात रे।
घूमर लेती ख्याल मं॥[2]

(7)

कुणी जी रो दीवला म, कुणी जी री बाट ?
कुणीजी री राणियाँ, धम धम घी भरे ?
बलजे म्हारा दिवला रे, सारी रात।
जलजे म्हारा दिवला रे, सारी रात।
थारी मगल री बाट, वलजे म्हारा दिवला सारी रात।

---

1 राजस्थानी लोकगीत—भाग 1 सं० रामप्रसाद कमठान, पृ० 63
2 राजस्थानी लोकगीत—स० रामप्रसाद कमठान,

कुणी मा रा दिवला, न कुणी मा री बाट ?
कुणी सा री बाटड़ी, जागजी सारी रात ?
मुरग म्हारी नणदल, नणदोई री बाता।
पियाजी रो हत, जल जी सारी राता ।।[1]

(8)

आओ हिड़िया रे ! हिड़ियारे ! हिड़िया ! गाँव की गोर !
पाल्याँ पाल्याँ दीया जग र जग जग माग तल !
तल तो बिलायो घाटगी रे दीया न लग्या चोर।
डरिया डेरिया रे, टीबाँ टीबाँ खाज।
दुश्मन हो तो मार द्यू रे तूली की तलवार !
आओ हिड़िया रे ! हिड़िया रे ! हिड़िया गाँव की गोर

(9)

अदरसण स रे धोल्या उतर्‌या, घोक गले रे फूलाँ की माल
य ई आवो रे धोल्या अमरत लाक म, य तो खींचो रे जम्याँ का भार
जाता ता लेंगा र धोबा बारणा, धाका चरणाँ म देगा धाव।
बडा ता घराँ रे धोल्या जावज्या, वहाँ तो बम रे सतवती नार।
मैं ता जावाँ अमरत लाक म, माँ वा राखो रे जम्याँ का भार।
रस्यो ता दना म धणा म्हारा आवगा, य सदी ता करगा संभाल।
कानी ता मइना अटक लागारिया, ज्यान आवै र ढाल्याँ का त्वार।
गगा न जमना म धाल्याँ म्हारा न्हावज्या थाई तल-धन पूगामाड।
अगरा ना बगला मूलाँ मोड दी, फूटा पै मोड्या सूरज चाँद।
रग्या ता घम्यो धाल्या म्हारा दीगला, जाण वारण आया बाद।
माता सजो रो र आरत्याँ, धोल्याँ दा रे बमन की माड।[2]

---

1 लेखक के संग्रह से।

2. [illegible] राजस्थानी [illegible] हाड़ौती—[illegible]

(10)

काओ हरणी थू क्यू दुबली, चाल म्हारा देस
कुआ माय करेली रे, उखा तीखा पान
कुआ माय कबूतर रे, चुगो पानी न खाय ।[1]

परिशिष्ट-ख

पुस्तकों की सूची

(1) रामचरित मानस—गोस्वामी तुलसीदास
(2) सूर सागर—सूरदास
(3) जायसी ग्रन्थावली—स० श्री रामचन्द्र शुक्ल
(4) लोक साहित्य विज्ञान—डॉ० सत्येन्द्र
(5) ढोला मारू रा दूहा—स० ठाकुर रामसिंह, श्री सूर्यकरण पारीक तथा श्री नरोत्तम स्वामी
(6) राजस्थान के लोकगीत—वही
(7) पोइट्री एण्ड दी पीपील—केन्नथ रिचमंड
(8) हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य—डॉ० शंकरलाल यादव
(9) भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन—डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय।
(10) द सोइस आफ इंडिया—ई० ओ० मार्टिन
(11) एलिमेंट्स आफ दि साईन्स आफ लेंग्वेज—आई० जे० एस० तारापुर वाला
(12) भोजपुरी ग्राम गीत भाग 1—डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय
(13) भोजपुरी ग्राम गीत भाग 2—वही
(14) आधुनिक कवि पंत—श्री सुमित्रानन्दन पंत
(15) बिहारी सतसई—बिहारी लाल
(16) कनउजी लोकगीत—लेखक संतराम अनिल
(17) ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन—डॉ० सत्येन्द्र
(18) राजस्थानी लोकगीत—रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत
(19) राजस्थानी लोकगीत—स० गंगाप्रसाद कमठान
(20) राजस्थानी लोकगीत—पुरुषोत्तम लाल मेनारिया।
(21) राजस्थानी लोकगीत—श्री जगदीशसिंह गहलोत।
(22) वीर सतसई—श्री सूर्यमल मिश्रण

(23) मारवाड के मनोहर गीत—प० रामनरेश त्रिपाठी
(24) इन्ट्राडक्शन टू स्काटिश एण्ड इगलिश बैलेड्स,—प्रो० कीटरीज
(25) कविता कौमुदी भाग 5—प० रामनरेश त्रिपाठी
(36) धीरे बहो गगा—दवेन्द्र सत्यार्थी
(27) ग्राम साहित्य—प० रामनरेश त्रिपाठी
(28) हिन्दी साहित्य की भूमिका—प० हजारीप्रसाद द्विवेदी
(29) लिटरेरी ऐसज—डेविड डैचो
(30) हिन्दी साहित्य—प० हजारी प्रसाद द्विवेदी

परिशिष्ट-ग

पत्र-पत्रिकाओं की सूची

(1) मरु भारती—त्रैमासिक—पिलानी
(2) परम्परा—त्रैमासिक—जोधपुर
(3) समाज कल्याण—मासिक—जयपुर
(4) गौतमसग्रा—मासिक—अजमेर
(5) इलीस्ट्रैट विकली—साप्ताहिक
(6) राष्ट्रवाणी—साप्ताहिक—अजमेर
(7) यूनिवरसिटी आफ राजस्थान स्टडिज—आर्टस् वोल्यूम—7

जगमल सिंह

1939 । राजस्थान मे ।
से राजस्थान एव मणिपुर म
एव शोध निर्देशन ।

तकें

एव गुजराती लोकगीतो का तुलना-
न

लोकगीतो के विविध रूप

राजभाषा की प्रगति
सस्कृति
लोक कथाएँ
क कथाएँ
ण भक्त कोश (तृतीय खण्ड)

सम्पादित)
। (सम्पादित)
विध सन्दर्भ (सम्पादित)
पा और साहित्य (सम्पादित)

ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मणि-
, काचीपुर इम्फाल-795003